ओ३म्

कुछ करो कुछ बनो

लेखक

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006
दूरभाष : 3914945, 3977216
E-mail : ajayarya@ndb.vsnl.net.in
Web : www.vedicbooks.com

संस्करण : 2002 ई०

मूल्य : 16 रुपये

मुद्रक : **स्पीडो ग्राफिक्स**, दिल्ली 51

KUCHH KARO KUCHH BANO
by Swami Jagdishwaranand Saraswati

भूमिका

आज भारत को ऐसे युवकों की आवश्यकता है—

जिनके सीने में हों रोशन देश-भक्ति के चिराग़।
दिल तो दिल, दिल की तरह जिनके धड़कते हों दिमाग़॥

देश के युवक अपनी शक्ति को पहचानकर अपने जीवन का निर्माण करें। उत्तम-उत्तम गुणों का धारण करके अपने जीवन को दिव्य और महान् बनायें। भौतिकवाद और नास्तिकता की चकाचौंध से बचकर अध्यात्मवादी और आस्तिक बनें। देश के युवकों का चरित्र महान् हो—उनमें माता, पिता और गुरुओं के प्रति आदर हो, देश के लिए प्यार हो, कर्त्तव्य-पालन और सेवा की भावना हो—युवकों में इन गुणों के विकास के लिए ही यह प्रयास है।

युवको! सावधान! जीवन व्यर्थ न चला जाये। कुछ करके दिखा दो, कुछ बन के दिखा दो। सदा स्मरण रक्खो—

हँस के दुनिया में मरा कोई, कोई रोके मरा।
मौत बस अच्छी उसकी है जो कुछ होके मरा॥

यदि इस पुस्तक से कुछ भी युवकों को प्रेरणा मिली तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

वेद सदन
एच १।२ माडल टाउन,
दिल्ली-११०००९

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

कहाँ क्या है ?

□

॥ ओ३म् ॥

: १ :

प्रेम करो !

'प्रेम' ! इस ढाई अक्षर के शब्द में विचित्र आकर्षण और अद्भुत जादू है। प्रेम में वह जादू है कि शत्रु भी अपना मित्र बन जाता है। प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है, क्रोध से क्रोध, घृणा से घृणा और द्वेष से द्वेष। यदि आप चाहते हैं कि दूसरे आपसे प्रेम करें तो आप भी सबके साथ प्रेम करें।

स्मरण रक्खो—

ईशावास्यमिद ँ सर्वम्। (यजुः० ४० । १)

यह सारा संसार ईश्वर से आच्छादित है, ढका हुआ है। ईश्वर इसमें ओत-प्रोत है, अतः घृणा, ईर्ष्या, जलन, शत्रुता और दूसरों को अपमानित करने की भावनाओं को अपने हृदय से निकाल दो। सबकी सेवा करो। सबका सम्मान और आदर करो। सबके साथ प्रेम करो और सबमें ईश्वर के दर्शन करो। आपकी आँखों में स्नेह, हृदय में प्यार और वाणी में मिठास हो।

प्रेम भी कैसा ? निःस्वार्थ प्रेम—

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।

(अ० ३ । ३० । १)

एक-दूसरे के साथ ऐसा प्रेम करो जैसे गौ अपने नवजात शिशु के साथ करती है। गाय के प्रेम में स्वार्थ की भावना नहीं होती। हम भी ऐसा ही प्रेम करना सीखें।

पापी से भी प्रेम करो। किसी ने कितना सुन्दर कहा है--

Hate the sin, but love the sinner.

अर्थात् पापी से घृणा मत करो। हाँ, पाप से बचो।

सार्वभौम प्रेम उत्पन्न करो। प्राणिमात्र से प्रेम करो। वेद के शब्दों में आपकी ऐसी भाव्य-भावना होनी चाहिये—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

(यजु:० ३६। १८)

मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं।

आपके जीवन का आदर्श हो—

Love your enemies, bless them that curse you, do good to them that hate you.

अपने शत्रुओं से भी प्यार करो। जो आपको गाली देते हैं उन्हें आशीर्वाद दो, जो आपसे घृणा करते हैं उनके साथ श्रेष्ठता का वर्ताव करो।

प्राणिमात्र से प्रेम की भावना घर से आरम्भ होती है। पहले अपने माता-पिता के साथ प्रेम का व्यवहार करो। अपने भाई-बहन, बन्धु-बान्धव, पड़ोसी, समाज, देश और राष्ट्र से प्रेम करो, फिर अपने प्रेम की परिधि को बढ़ाते हुए संसार के प्राणिमात्र से प्रेम करो।

अपने देश के लिए यदि अपने प्राणों की बलि भी देनी पड़े तो हँसते-हँसते दे दो। भारतीय वीरों के आदर्श को सदा अपने

सम्मुख रक्खो। एक भारतीय वीर का अपने देश के प्रति सच्चे प्रेम का एक मार्मिक उदाहरण पढ़िये—

मनीला (बर्मा) में 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' और अंग्रेज़ों में भीषण युद्ध हो रहा था। आज़ाद हिन्द सेना के सेनापति पहाड़ों की तलहटी में बनी सुरंग में बैठे थे। ऊपर पृथिवी पर गोला-बारी हो रही थी। सहसा एक भारतीय सैनिक, जिसका एक हाथ युद्ध में कट गया था, दौड़ता हुआ उस सुरंग में आया। जनरल शाहनवाज़ ने उसे सान्त्वना देने के लिए कुछ शब्द कहे तो वह गर्व के साथ बोला, "जनरल ! शोक या खेद की कोई बात नहीं है। मैंने अपना यह शरीर और जीवन भारत माता के अर्पण किया था। उसमें से उसने एक हाथ स्वीकार कर लिया है, यह तो मेरा पुरस्कार है।"

देश-प्रेम का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है !

जिस व्यक्ति में दूसरों के लिए प्रेम नहीं, सहानुभूति नहीं, जिसके हृदय में प्रेम की हिलोरें नहीं उठतीं, जो प्रेम का पुजारी नहीं, वह जीवित हुआ तो क्या है ! वह वस्तुतः तो मृतक के समान है। कबीर जी के शब्दों में—

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिनु प्राण ॥

प्रेम से न केवल इस लोक में ही सफलता मिलती है अपितु यह परलोक को सुधारने में भी सहायक होता है। इस विषय में पोप ने कितना सुन्दर कहा है—

Love is ever a golden ladder,
Whereby the heart ascends to Heaven. (Pope)

प्रेम वह स्वर्णिम सीढ़ी है जिसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग को आरोहण करता है। जिस प्रकार दो ईंटों के मध्य में चूना अथवा

गारा रखने से उनमें दृढ़ता आ जाती है, इसी प्रकार दो व्यक्तियों में स्थिरता और दृढ़ता उत्पन्न करने के लिए प्रेमरूपी गारे की आवश्यकता है।

प्रेम वह अग्नि है जिसमें पाप और ताप जलकर भस्म हो जाते हैं। प्रेम की अग्नि में अपने मन, वचन और कर्म को पवित्र करो। प्रेम के पवित्र सागर में डुबकियाँ लगाकर स्नान करो। प्रेम के माधुर्य का आनन्द अनुभव करो और प्रेम की प्रतिमा बन जाओ। मिलकर एक-दूसरे की रक्षा करो। लड़ाई-झगड़ा आपके निकट न आये। कभी परस्पर द्वेष मत करो, एक-दूसरे से प्रेम करो।

प्रेम में महान् शक्ति है। यह रोगों को दूर करके आयु को बढ़ाता है और आनन्द-घन की प्राप्ति कराता है। यदि आप अपने जीवन को सुखमय और आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो अपने जीवन में प्रेम का महासागर भरो। वृक्षों को देखो! वे अपने शत्रु को भी जो उसे कुल्हाड़ी से काटता है, शीतल छाया प्रदान करते हैं। यही है वास्तविक प्रेम, मनुष्य का महान् धर्म! प्रेम करो और प्रेममय हो जाओ।

□

: २ :

विनम्र बनो !

वेद का आदेश है—

पर्णाल्लघीयसी भव। (अथर्व १० । १ । २९)

हे मानव ! तू पर्ण=पत्ते से भी हलका बन अर्थात नम्र बन।

जो नम्र बनता है उसके पास सद्गुण और सम्पत्ति स्वयं खिची चली आती है। 'विष्णु पुराण' (१ । ११ । २४) में कहा है—

सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथाप: प्रवणाः पात्रमायन्ति सम्पदः॥

हे मनुष्य ! तू सुशील, पुण्यात्मा, प्रेमी और समस्त प्राणियों का हितैषी बन क्योंकि जैसे नीची भूमि की ओर लुढ़कता हुआ जल अपने-आप ही पात्र में आ जाता है वैसे ही सत्पात्र=विनम्र मनुष्य के पास समस्त सम्पत्तियाँ स्वयं आ जाती हैं।

बहुत-से व्यक्ति तनिक-सी विद्या पाकर अभिमान में मर जाते हैं। विद्या प्राप्त करके ऐंठो और अकड़ो मत, अपितु शिष्ट और विनम्र बनो। विद्या से अभिमान नहीं, नम्रता आनी चाहिये। किसी नीतिकार ने कितना सुन्दर कहा है—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति, धनाद् धर्मस्ततः सुखम्॥

विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से पात्रता=योग्यता प्राप्त होती है, योग्यता से धन मिलता है, धन से धर्म-कार्यों का अनुष्ठान होता है और सुख की प्राप्ति होती है। यदि आप भी सुख, शान्ति और आनन्द चाहते हैं तो नम्र बनो।

युवको ! जब आपके हृदय में अभिमान की भावनाएँ आने लगें तो महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी और न्यूटन का ध्यान कर लिया करो।

महर्षि दयानन्द दानापुर में विराजमान थे। एक दिन एक व्यक्ति ने महाराज से कहा, "स्वामी जी ! आप तो ऋषि हैं।" स्वामी जी ने उत्तर दिया, "ऋषि के अभाव में आप मुझे चाहे जो कह लें। यदि मैं गौतम, कपिल, कणादादि के समय में हुआ होता तो मेरी गणना साधारण विद्वानों में भी कठिनता से होती।" वेद के अद्भुत विद्वान् की कैसी महान् विनम्रता है !

न्यूटन का नाम आपने अवश्य सुना होगा। प्रकृति का गम्भीर अध्ययन करके उन्होंने गुरुत्वाकर्षण[1] (The law of gravitation) आदि सिद्धान्तों का आविष्कार किया था। न्यूटन की विद्या और बुद्धि पर सारे इंगलैण्ड को गर्व था परन्तु स्वयं न्यूटन को अपनी विद्या-बुद्धि पर न कोई गर्व था और न ही किसी प्रकार का अहंकार। एक दिन एक महिला न्यूटन से मिली और उनकी विद्या, बुद्धि एवं योग्यता की सराहना और प्रशंसा करने लगी। अपनी प्रशंसा सुनकर न्यूटन फूलकर कुप्पा नहीं हुए। वे बोले—

---

१. महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इस सिद्धान्त का उल्लेख न्यूटन के जन्म से भी सहस्रों वर्ष पूर्व कर दिया था, अतः भारतीयों के लिए यह कोई नई बात नहीं।

Alas ! I am only like a child picking up pebbles on the shore of the giant ocean of truth.

अर्थात् मैं तो उस बच्चे के समान हूं जो सत्य के विशाल समुद्र के किनारे बैठा हुआ केवल कंकरों को चुनता रहा है।

एक बार महात्मा गांधी जी एक स्थान पर लैक्चर देने गये। वे अपने सादा वेश में थे। लोगों ने उन्हें सब्जी काटने और पानी लाने की आज्ञा दी। उन्होंने इन कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक किया।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक युवक के कहने पर उसके ट्रंक को उठाकर चल दिये। इसी प्रकार यदि हम अन्य महापुरुषों के जीवनों को देखें तो पता लगेगा कि महापुरुष बड़े नम्र होते हैं। उनके जीवन से शिक्षा लेकर हम भी नम्र बनें।

देखो ! समुद्र में अनेक नदियाँ आकर मिलती हैं परन्तु समुद्र शान्त रहता है, उसमें बाढ़ नहीं आती। आप भी गम्भीर और नम्र बनो। विद्या, धन, वैभव, उच्च पदवी, मान और सम्मान पाकर फूल मत जाओ, अपनी मर्यादा से बाहर मत हो जाओ।

जो नम्र है उसे न किसी से भय होता है और न पतन की चिन्ता। जो नम्र है उसका सर्वत्र आदर होता है। एक कवि ने क्या सुन्दर कहा है—

सबतें लघुताई भली, लघुता से सब होय।
जस द्वितीया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय।।

जो अभिमानी होता है उसका सर्वत्र तिरस्कार होता है। किसी ने फुटबाल से पूछा, "क्या कारण है तुम जिसके चरणों में जाती हो वही तुम्हें ठोकर लगाता है?" फुटबाल ने कहा, "मेरे पेट में अभिमान की हवा भरी हुई है, इसीलिए लोग मुझे

ठोकर लगाते हैं।" यदि आप चाहते हैं कि लोग आपका आदर-सम्मान करें तो विनम्र बनो।

नम्रता मानव-जीवन का भूषण है। नम्रता से मनुष्य के गुण सुवासित और सुशोभित हो उठते हैं। नम्रता विद्वान् की विद्वत्ता को, धनवान् के धन को, बलवान् के बल को और सुरूप के रूप को चार चाँद लगा देती है। सच्चा बड़प्पन और सभ्यता भी नम्रता में ही है।

एक बार फ्रांस के राजा हेनरी चतुर्थ अपने अधिकारियों के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक भिक्षुक ने अपनी टोपी उतारकर और मस्तक झुकाकर अभिवादन किया। महाराज ने भी इसी प्रकार उत्तर दिया। यह देखकर एक अधिकारी ने पूछा, "महाराज ! क्या एक भिखारी को इस प्रकार अभिवादन करना उचित है ?" हेनरी महोदय ने कहा, "सभ्यता मिथ्या-अभिमान में नहीं, नम्रता में है। मुझे एक भिक्षु-जितना नम्र तो होना ही चाहिये।" हम भी इस घटना से शिक्षा लें। हम किसी को छोटा न समझें। जब दूसरों से मिलें तो दोनों हाथ उठाकर नमस्ते करें।

उत्तानहस्ता नमसोप सद्य।

(यजु:० १८। ७५)

यदि संसार में उन्नति करना चाहते हो, मान और सम्मान चाहते हो तो विनम्र बनो।

□

: ३ :

समय का सदुपयोग करो !

समय की शक्ति अद्‌भुत और महान् है। आंगल भाषा में एक कहावत है "Time is money." अर्थात् समय धन है। युवको ! आपके जीवन के एक-एक क्षण में कुबेर की सम्पत्ति छिपी है अतः अपने समय का उपयोग बड़ी सावधानी से करो।

गया हुआ धन, खोया हुआ स्वास्थ्य, भूली हुई विद्या, छिना हुआ साम्राज्य फिर आ सकता है परन्तु गया हुआ समय कदापि नहीं लौट सकता। इसी तथ्य को दर्शाने के लिए एक चित्रकार ने समय का कार्टून बनाया। कार्टून में चित्रकार ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाया था जिसका चेहरा आगे की ओर तो बालों से ढका था और पीछे की ओर गंजा था। उसके पैरों में पंख लगे हुए थे।

लोगों ने पूछा, "यह किसका चित्र है ?"

चित्रकार ने कहा, "समय का।"

"इसका मुंह क्यों ढका हुआ है ?" लोगों ने पुनः प्रश्न किया।

"क्योंकि जब वह मनुष्य के सामने आता है तो वे इसे पहचान नहीं सकते।"

'यह पीछे से गंजा क्यों है ?"

"इसलिए कि समय के आते ही उसके बाल सामने से पकड़ लो; यदि चूके तो फिर करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी एक क्षण की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।"

"इसके पैरों में पंख क्यों हैं ?"

"इसलिए कि यह बहुत शीघ्र चला जाता है और जब चला जाता है तो फिर उसको देवता भी नहीं पकड़ सकते ।"

कुछ व्यक्ति सोचते हैं अभी जल्दी क्या है, कर लेंगे; परन्तु यह भयंकर भूल है। यदि उठती हुई जवानी में कुछ न किया तो आगे क्या हो सकेगा ? अभी से, इसी क्षण से अपने समय का सदुपयोग आरम्भ कर दीजिये। देखिये तो सही, एक कवि आपको कैसी सुन्दर चेतावनी दे रहा है—

खेल ही में बाल जो दिन काटता वह है बुरा।
शोक ! अपने हाथ वह है मारता उर में छुरा ।।
बालपन से लाभ पहुँचाना उचित है लोक को।
क्या प्रकट करता नहीं बालेन्दु निज आलोक को ।।

जीवन बड़ा ही अल्प है और कार्य महान् है, अतः आज के कार्य को कल पर मत छोड़ो। वेद कहता है—

कालो अश्वो वहति। (अथर्व० १६ । ५३ । १)

अर्थात् समय-रूपी घोड़ा भागा जा रहा है।

अपने समय को व्यर्थ न जाने दीजिये। तनिक-सी देर होने से गाड़ी छूट सकती है। जरा-सी देर होने से आप परीक्षा में सम्मिलित होने से रह सकते हैं। थोड़ी-सी देर होने से साम्राज्य नष्ट हो सकते हैं। भविष्य की आशाओ ! यदि तुम मूर्खों की भाँति अपने समय को व्यर्थ खोते रहोगे, अपने जीवन के अमूल्य क्षण आलस्य, प्रमाद, गपशप और तुच्छ मनोरंजन में खोते रहोगे तो स्मरण रक्खो, तुम्हारी गिनती कभी भी महापुरुषों में न हो सकेगी और तुम कठिनाइयों में फँसकर दर-दर की ठोकरें खाते रहोगे।

महावीर नेपोलियन के आदर्श को सदा अपने सामने रखिये। वह अपनी घड़ी का अध्ययन इसी प्रकार किया करता था जिस प्रकार युद्ध के नक्शे का। सेना की तो बात ही क्या, वह अपने सेनानायकों का भी कड़ा निरीक्षण किया करता था। एक बार उसका मन्त्री दस मिनट देर से आया। नेपोलियन के कारण पूछने पर उसने घड़ी दिखाकर कहा, "मेरी घड़ी दस मिनट लेट है।" तब नेपोलियन ने कहा, "Either you change your watch or I shall change you. अर्थात् या तो तुम अपनी घड़ी बदल लो, नहीं तो मैं तुम्हें बदल दूंगा।"

प्रिय युवको! आप अपनी कलाई पर घड़ी बाँधते हैं, परन्तु शोभा के अतिरिक्त क्या आप इसका वास्तविक उपयोग लेते हैं? टिकटिक करती हुई घड़ी आपको सन्देश दे रही है, आपको सचेत कर रही है कि उद्यम और पुरुषार्थ ही जीवन है, निरन्तर कार्य में लगे रहो, एक क्षण को भी व्यर्थ मत जाने दो। परन्तु क्या आप उसकी प्रेरणा को सुनते हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। आपकी कलाई में घड़ी होते हुए भी आप स्कूल और कॉलेज में देर से पहुँचते हैं, सभा और समाजों में ठीक समय पर नहीं जा पाते। क्या आपके पढ़ने-लिखने, खाने-पीने, सोने-जागने का कोई समय निश्चित है? यदि नहीं, तो आपका घड़ी बाँधना व्यर्थ है। घड़ी को अंग्रेज़ी में Watch कहते हैं। इसका प्रत्येक अक्षर एक दिव्य-सन्देश दे रहा है। वे सन्देश निम्न हैं:

१. Watch your word. अपने वचनों की, दूसरों के साथ की हुई प्रतिज्ञाओं की ओर ध्यान दीजिये। आप दूसरों के साथ जो प्रतिज्ञा करते हैं उनका पालन कीजिये।

२. Watch your actions. अपने कार्यों पर दृष्टि डालिये। क्या आप अपने कर्तव्यों को निभा रहे हैं?

३. Watch your thoughts. अपने विचारों पर नियन्त्रण रखिये। अपने विचारों को शुद्ध और पवित्र बनाइये। दूसरों के प्रति कल्याण की भावना रखिये।

४. Watch your character. प्रतिदिन अपने चरित्र का अवलोकन कीजिये और अपने चरित्र को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न कीजिये।

५. Watch your heart. अपने हृदय में झाँकिये। देखिये कि आपके हृदय में क्षुद्रता और संकीर्णता तो नहीं है? अपने हृदय को विशाल बनाइये।

यदि आपके जीवन में उपर्युक्त गुण नहीं हैं तो आपका घड़ी बाँधना व्यर्थ है। समय के मूल्य को समझिये। उसके एक-एक क्षण का सदुपयोग कीजिये। अभी से लङ्गर-लङ्गोटे कस लीजिये और अपने जीवन-निर्माण की योजना आरम्भ कर दीजिये।

□

: ४ :

आगे बढ़ो !

वेद मानवमात्र को प्रगतिशील बनाता है। वेद चेतावनी देते हुए कहता है—

उत्क्रमातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।

(अ० ८।१।४)

हे पुरुष ! अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठ, नीचे मत गिर। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग में आये तो उसकी बेड़ियों को भी काट डाल।

आगे चलकर वेद पुनः आदेश देता है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।

(अ० ८।१।६)

हे मनुष्यो ! ऊपर उठो, आगे बढ़ो, उन्नति करो, नीचे मत गिरो, पतन की ओर मत जाओ।

अपनी असफलताओं के कारण निराश और हताश मत होओ। असफलता तो सफलता की सीढ़ी है। यदि पहली बार सफलता नहीं मिलती तो पुनः उद्योग करो। निरन्तर उद्योग करते रहो, सफलता मिलेगी अवश्य।

अभी पिछले दिनों समाचारपत्रों में एक घटना प्रकाशित हुई थी। एक दुकानदार प्रतिवर्ष मैट्रिक की परीक्षा में बैठता था, परन्तु फ़ेल हो जाता था। एक बार, दो बार, तीन बार नहीं, वह लगातार १७ बार असफल हुआ। परन्तु उसने अपना साहस नहीं छोड़ा। १८वीं बार वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

आप भी असफलताओं से घबराओ मत ! किसी कवि ने क्या खूब कहा है—

जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो॥

धैर्य रक्खो ! साहसी बनो ! यदि मार्ग पर चलते हुए विघ्न-बाधा और संकट आते हैं तो उन्हें धैर्यपूर्वक सहन कीजिये। यदि आप धैर्यरूपी गुण को अपने जीवन में ढाल लें तो फिर संकट संकट नहीं रहेंगे। "Even this will pass away. यह स्थिति भी नहीं रहेगी"—यह आपके जीवन का आदर्श-वाक्य होना चाहिये। फिर संसार की कोई शक्ति तुम्हें रोक नहीं सकेगी। एक कवि के शब्दों में—

बाधायें कब बांध सकी हैं आगे बढ़नेवालों को !
विपदायें कब रोक सकी हैं मरकर जीनेवालों को !

वीरता, धीरता और गम्भीरता के साथ अपने पथ पर बढ़े चलो। जब प्रभु आपकी पीठ पर है तब निराशा क्यों ?

पवित्रात्माओ ! यदि आपत्तियाँ और विपत्तियाँ न हों तो हम अपना जीवन-निर्माण कैसे कर सकते हैं ? इमरसन ने एक स्थान पर लिखा है—

"The calamities are our friends."

अर्थात् आपत्तियाँ हमारी मित्र हैं। हमारे जीवन-विकास के लिए ये आपत्तियाँ और विघ्न आवश्यक हैं।

नौजवानो ! हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे रहने से कोई कार्य नहीं होगा। चिन्ता करने या भाग्य को कोसने से भी कुछ नहीं बनेगा। स्मरण रक्खो ! भाग्य कोई वस्तु नहीं है। आप अपने पुरुषार्थ और प्रयत्न से बुरी-से-बुरी दशा को बदलकर अपने अनुकूल बना सकते हो। "जैसा भाग्य में लिखा होगा वैसा हो

जायेगा"—इस प्रकार रोने-धोने और चिल्लाने से कोई लाभ नहीं। अपने भाग्य के निर्माता और विधाता तो आप स्वयं हैं। यदि आप ठीक दिशा में उद्योग करें तो आपके ऊपर ईश्वर की कृपाओं की वृष्टि निश्चित रूप से होगी। निराशा को छोड़कर आगे बढ़े चलो।

५,००० वर्ष से आलस्य और प्रमाद-रूपी निद्रा में सोने-वाले भारत माता के नौनिहालो! बहुत सो चुके, अब तो करवट बदलो। देखो आपके देश की क्या दशा हो गई! आज अत्याचार, अनाचार और पापाचार बढ़ रहा है। माँ-बहनों का सतीत्व लूटा जा रहा है। देश का नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा है। अन्यायी और अत्याचारी तुम्हें और तुम्हारे देश को निगल जाने के लिए तैयार बैठे हैं। अब उठो! तुम्हारी भारत माँ तुम्हारे सिरहाने बैठी तुम्हें जगा रही है।

आर्य वीरो अब जागृत होकर,
आगे बढ़ो मशाल लिये।
अत्याचारों से टक्कर लेने,
बलि होने की शान लिये॥

हाँ-हाँ वीर बहादुरो! बढ़े चलो—

प्रेता जयता नर।

(ऋ० १० । १०३ । १३)

आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

सच्चे कर्मवीर विघ्न-बाधाओं से घबराते नहीं। कविवर अयोध्यासिंह जी के शब्दों में—

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग्य के, दुःख भोग पछताते नहीं॥

युवको ! तुम शक्ति के हो और शक्ति तुम्हारी है। अज्ञान, आलस्य और दुर्बलता—मनुष्य के ये तीन महान् शत्रु हैं। इन्हें आज ही जड़ से उखाड़कर फेंक दो और आगे बढ़ो।

युवको ! पृथिवी जल रही है। मानवता का ह्रास हो रहा है। दानवता खुलकर ताण्डव-नृत्य कर रही है। धर्म को समाप्त किया जा रहा है, अधर्म बढ़ रहा है। मद्य, मांस आदि का सेवन बढ़ता जा रहा है। भौतिकवाद की चकाचौंध बढ़ रही है। दीन-दुःखियों को त्रास दिया जा रहा है। सत्य का गला घोंटा जा रहा है। यह सब-कुछ हो रहा है और आप सो रहे हैं ? उठो, खड़े हो जाओ ! मानवता का कल्याण करने के लिए अपने हाथों में वेद-रूपी अमृत-कलश लेकर लोगों के तापों को शान्त करते हुए निरन्तर आगे-ही-आगे बढ़ो !

: ५ :

दयालु बनो !

दया का अर्थ है—किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार क्लेश न देना। शरीर, वाणी, मन अथवा किसी प्रकार से किसी को कष्ट पहुँचाने से दया समाप्त हो जाती है। किसी भी प्राणी को कष्ट मत दो। तुलसीदास जी ने कहा है—

परहित सरस धर्म नहिं भाई।
नहिं पर-पीड़ा सम अधमाई ॥

दूसरों के साथ दयालुता के व्यवहार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा देने के समान कोई पाप नहीं है।

दया मनुष्य-जीवन की सुगन्धि है। अपने जीवन को इस सुगन्धि से सुवासित कर लो। दीन, दुःखी, निर्बलों और दुर्बलों की पुकार सुनकर अपने कान बन्द मत करो। दूसरों को कष्ट और क्लेश में देखकर कठोर-हृदय न बन जाओ। जब अनाथ और अपाहिज आपसे सहायता माँगें तो अपना मुँह मत मोड़ लो अपितु तन, मन और धन जिस प्रकार से भी हो सके उनकी सेवा करो। मार्ग भूले हुए लोगों को सन्मार्ग पर चलाओ। असहाय एवं निर्धन रोगियों की सहायता करो।

डॉ० दुर्गाचरण नाग बड़े ही दयालु थे। मुहल्ले में कौन रोगी है, किसके पास भोजन नहीं है, कौन दुःखी है, किसे सहायता की आवश्यकता है—वे सदा इसी खोज में रहते थे और अपनी शक्ति और सामर्थ्यानुसार सेवा भी करते थे। ग़रीबों से फ़ीस की तो बात ही क्या, दवा के दाम भी न लेते थे।

कभी-कभी तो पथ्य का खर्च भी अपने पास से दे देते थे। यदि मार्ग में कोई निराश्रय रोगी मिल जाता तो उसे अपने घर लाकर उसकी चिकित्सा करते थे।

एक दिन उन्होंने एक रोगी के घर जाकर देखा कि वह पृथिवी पर पड़ा है। उसे भारी कष्ट हो रहा है। नाग महाशय ने उसी समय घर से अपने सोने की चौकी मँगाकर रोगी को उसपर लिटा दिया। इससे रोगी को बहुत आराम मिला। रोगी को सुखी देख नाग महाशय का हृदय प्रफुल्लित हो गया। "पर-दुःख दुःखी, सुखी पर-सुख तें"—यह उनके जीवन का व्रत था।

एक और घटना पढ़िये। एक छोटे बच्चे को हैज़ा हो गया। नाग महाशय दिनभर बच्चे की चिकित्सा में लगे रहे, परन्तु बच्चा बच न सका। घरवालों ने सोचा था, आज दिनभर की बहुत बड़ी फ़ीस लेकर डॉक्टर साहब घर लौटेंगे। परन्तु शाम को जब वे लौटे तो ख़ाली हाथ थे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। घर आकर उन्होंने कहा—"बेचारे गृहस्थ के एक ही बच्चा था। किसी प्रकार बच न सका। उसका घर सूना हो गया।" उस रात्रि को उन्होंने भोजन तो दूर, जल भी ग्रहण नहीं किया।

युवको! आपमें से न जाने कितने डॉक्टर बनेंगे। यदि आप डॉक्टर बनें तो महाशय नाग के जीवन को समक्ष रखते हुए आप भी दयालु बनें।

दूसरों को दुःख में देखकर द्रवित हो जाओ। दूसरों को दुःख में देखकर उनकी सहायता करो।

अमेरिका के राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन अपने लोकोत्तर गुणों के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हुए हैं। एक दिन वे सभा में

जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक जंगली सुअर को कीचड़ में फँसे देखा। देखकर भी वे रुके नहीं; आगे चले गये। परन्तु थोड़ी दूर जाने के पश्चात् वे पुनः लौटे और उस सुअर को कीचड़ से बाहर निकाला। सभा का समय हो रहा था, अतः वे उन्हीं कपड़ों से सभा में पहुँचे। लोगों ने उनके कपड़ों के खराब होने का कारण पूछा तो उन्होंने सारी घटना बता दी। सभा में उपस्थित सभी सभ्य उनकी दयालुता की प्रशंसा करने लगे तो अब्राहम महोदय ने कहा, "मैंने किसी पर कोई उपकार नहीं किया है। उस सुअर को कीचड़ में फँसा देखकर मेरे हृदय में एक वेदना हुई थी। उसे कीचड़ से निकालकर मैंने अपने हृदय की टीस को दूर किया है।"

महर्षि दयानन्द कितने दयालु थे! जब उनके विष देनेवाले को पकड़कर उनके सामने लाया गया तो उन्होंने कहा, "इसे छोड़ दो, मैं संसार को कैद कराने नहीं आया अपितु मुक्त कराने आया हूँ।"

जब ईसा को शूली पर चढ़ाया गया तो उन्होंने अपने शत्रुओं के लिए प्रार्थना की, "प्रभो! ये लोग अज्ञानवश ऐसा कर रहे हैं, इन्हें प्रकाश दो।"

प्रिय कुमारो! महापुरुषों के जीवन आपके सामने हैं। इन्हें पढ़िये और इनसे प्रेरणा लेकर आप भी दयालु बनिये।

सबके साथ दयालुता का व्यवहार करो। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि समस्त बुराइयाँ निरन्तर दयालुता के व्यवहार से समाप्त हो जाती हैं। भगवान् बुद्ध आज भी हमारे हृदयों में एक स्थान बनाये हुए हैं। कभी सोचा किसलिए? इसलिए कि वे अत्यन्त दयालु थे। दयालुता के व्यवहार से आपमें भी अधिक शक्ति, अधिक प्रसन्नता और अधिक सन्तोष प्राप्त होगा।

मरते समय भी हृदय शुद्ध और पवित्र होगा । इस प्रकार मृत्यु के समय भी आपके मुख-मण्डलों पर हँसी और प्रसन्नता होगी।

इर्विंग ने एक स्थान पर लिखा है—

A kind heart is a fountain of gladness, making everything in its vicinity freshen into smiles.

अर्थात् दयालु हृदय प्रसन्नता का फ़व्वारा है जो कि अपने पास की प्रत्येक वस्तु को मुस्कानों से भरकर ताज़ा बना देता है।

दयालु बनो क्योंकि 'गेटे' के शब्दों में—

"दयालुता वह सोने की ज़ंजीर है जिसके द्वारा समाज परस्पर बँधा है।"

□

: ६ :

सत्य बोलो !

आर्यसमाज के नियम बनाते हुए महर्षि दयानन्द ने चौथे नियम में लिखा—

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।"

सत्य की महिमा महान् है। महाभारत में कहा है--

सत्यं स्वर्गस्य सोपानम् ।

सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है।

सत्य क्या है ? सत्य का अर्थ है यथार्थ ज्ञान। जैसा देखा, सुना या अनुभव किया हो, उसे वैसा ही कहने का नाम सत्य है। ऋषि दयानन्द के शब्दों में "जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

सत्यवादी बनो क्योंकि सत्यवादी की सभी प्रशंसा करते हैं, सभी उसका विश्वास करते हैं, वह आदर और सम्मान का पात्र बन जाता है। चाहे कैसा ही संकट उपस्थित हो जाय, कितनी ही हानि हो जाय, असत्य कभी मत बोलो।

चारुदत्त ब्राह्मण के आदर्श को सामने रक्खो। लोग उसके ऊपर विश्वास करके अपनी धरोहर उसके पास रख जाया करते थे। एक बार कोई उसके पास अपने कुछ रत्न रख गया। दैवयोग से ब्राह्मण के घर चोरी हो गई और धरोहर के रत्न भी चोरी में चले गये। रत्नों के जाने का चारुदत्त को बड़ा दुःख हुआ। एक मित्र को पता लगा तो उसने पूछा, "क्या कोई

साक्षी (गवाह) था ?" चारुदत्त ने कहा, "साक्षी तो कोई नहीं था।" मित्र बोला, "तब तो कुछ भी बात नहीं, कह देना मेरे पास रक्खे ही नहीं।" उस समय चारुदत्त ने जो उत्तर दिया वह प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श-वाक्य के रूप में सदा अपने सम्मुख रखना चाहिये। चारुदत्त ने कहा था—

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यास प्रतिक्रियाम्।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम्॥

(मृच्छकटिकम् ३। २६)

भिक्षा के द्वारा भी धरोहर योग्य धन का उपार्जन कर मैं उसे लौटा दूंगा, किन्तु चरित्र को कलंकित करनेवाले झूठ का उपयोग नहीं करूँगा।

इसके विपरीत आज तो बात-बात पर झूठ बोला जाता है। आज तो अवस्था यह है—

एक सैनिक छुट्टी लेने के लिए अपने अधिकारी के पास पहुँचा और कहा, "मेरी धर्मपत्नी बीमार है, घर से सूचना आई है कि छुट्टी लेकर पहुँच जाऊँ।" अधिकारी बोला, "मैं तुम्हारे घर पत्र डालकर पूछ लेता हूँ, तुम सात दिन पश्चात् मेरे पास आना।" जब यह सैनिक सात दिन पश्चात् पुनः अपने अधिकारी के पास पहुँचा तो उसने बताया, "मैंने तुम्हारे घर पत्र डाला था। वहाँ से उत्तर आया है कि वह बिल्कुल ठीक है, अतः तुम्हें छुट्टी नहीं मिलेगी।" यह सुनकर सैनिक बाहर आया तो उसकी हँसी फूट पड़ी। अधिकारी ने उसे बुलाकर उसकी हँसी का कारण पूछा तो उसने कहा, "मैं यह सोचकर हँसा था कि हम दोनों में बड़ा झूठा कौन-सा है ? मेरा तो अभी विवाह भी नहीं हुआ, फिर आपके पास चिट्ठी कहाँ से आ गई !"

ऐसा अनर्गल असत्य भाषण मत करो। वेद के शब्दों में आपकी यह भावना होनी चाहिये—

वाचः सत्यमशीय। (यजुः० ३९ । ४)

मैं अपनी वाणी में सत्य को प्राप्त करूँ।

सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप दीपक केवल बाह्य अन्धकार को दूर कर सकते हैं, परन्तु सत्य वह दिव्य-दीपक है जो आन्तरिक तम, अविद्या और अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसीलिए विद्वानों ने सत्य को श्रेष्ठ दीपक कहा है। वेद में कहा है—

ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति। (ऋ० ४ । २३ । ८)

सत्य का आचरण पापों को नष्ट कर देता है।

पाठकगण ! मनुष्य के लिए सत्य की रक्षा से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। जो असत्य भाषण करता है उसके अग्निहोत्र, तप, स्वाध्याय आदि सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं। बुद्धिमान् पुरुषों ने संसार-सागर को तरने के लिए सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया है। जब आप सत्यपथ से डगमगाने लगें और प्रलोभन आपको सताने लगें तो सत्यवादी हरिश्चन्द्र का स्मरण कर लिया करो। उनके जीवन को अपने समक्ष रक्खो। कितने संकट सामने आये। राज्य गया, परिवार से पृथक् हुए, डोम के यहाँ बिकना पड़ा, पुत्र भी चला गया, परन्तु वे सत्य से तनिक भी विचलित नहीं हुए।

संसार में जो भी सुख-सामग्री है, वह सत्य से ही प्राप्त होती है। सत्य से ही सूर्य तपता है, सत्य से ही अग्नि जलती है, सत्य से ही वायु चलती है। सत्य से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः सत्य को कभी न छोड़ना चाहिए।

सत्य बोलिये परन्तु आपके सत्य में भी माधुर्य हो। महर्षि मनु के शब्दों में --

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

(मनु० ४। १३८)

सत्य बोलो, प्रिय भाषा में बोलो, सत्य को कटु भाषा में मत बोलो।

यह शरीर आत्मा का मन्दिर और परमात्मा का निवास-स्थल है, अतः इसे गन्दा मत करो। असत्य भाषण से यह मन्दिर अपवित्र हो जाता है। आपके मुख से भूलकर भी असत्य वचन न निकले। यदि असत्य निकल ही जाय तो उसके लिए प्रायश्चित्त करो, पुनः असत्य न बोलने का व्रत लो।

सरलता को अपना रथ और सत्य को अपना शस्त्र बनाकर कार्यक्षेत्र में कूद पड़ो। आप जहाँ भी, जिस क्षेत्र में भी जायेंगे आपका स्वागत होगा और सफलता आपके गले में विजयमाला पहनायेगी। **'सत्यमेव जयते नानृतम्'**—सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। अतः सत्य बोलो !

□

: ७ :

सहनशील बनो !

दुःख और सुख, मान तथा अपमान, हानि और लाभ एवं स्तुति और निन्दा में जो सम रहता है, दुःख और सङ्कटों में भी जो हँसता और मुस्कराता रहता है—ऐसे व्यक्ति को सहनशील कहते हैं।

"सहनशीलता क्या है ?" किसी ने मंसूर से पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, "हाथ और पैर काटकर शरीर को सूली पर लटका दिया जाय, फिर भी मुख से उफ तक न निकले, उसे सहनशीलता कहते हैं।"

आपत्तियों और सङ्कटों को ईश्वर का वरदान और आशीर्वाद समझो। अपने कर्त्तव्यपथ पर हँसते और मुस्कराते हुए चलो। इसी में गौरव है। इसी में आन और शान, मान और मर्यादा है। इसी में वीरता, धीरता और सहनशीलता है। सङ्कटों से घबराओ मत, रोओ और बिसूरो मत। यदि आप रोकर चले तो चलना क्या हुआ ! रोने से मार्ग सरल नहीं हो जायेगा। अतः सावधान ! मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम की भाँति, योगेश्वर श्री कृष्ण और महर्षि दयानन्द की भाँति, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के समान, सुभाषचन्द्र बोस और वल्लभभाई पटेल के समान, भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद के पदचिह्नों पर चलते हुए कष्टों को सहन करने का स्वभाव बनाओ।

भगवान् राम के जीवन में कितनी आपत्तियाँ और संकट आये ! राज्याभिषेक के स्थान पर उन्हें वन में जाना पड़ा, परन्तु

फिर भी उनके चेहरे पर विषाद और शोक की क्षीण-सी रेखा तक नहीं थी। उनकी उस अवस्था का वर्णन वसिष्ठ जी के शब्दों में पढ़िये—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥

राज्याभिषेक के लिए बुलाए हुए और वन के लिए विदा किये हुए श्रीराम के मुख के आकार में मैंने कुछ भी अन्तर नहीं देखा।

महर्षि दयानन्द के ऊपर ईंट और पत्थर फेंके गये। उन्हें हलाहल विष दिया गया। उन्हें नाना प्रकार से अपमानित किया गया। उनपर लांछन लगाये गये। उन्हें विदेशियों का एजेण्ट बतलाया गया, परन्तु वे सब-कुछ सहते रहे और मानवमात्र का कल्याण ही करते रहे।

श्री कृष्ण के ऊपर कौन-से संकट नहीं आये! उन्होंने कंस के अत्याचार सहे, जरासन्ध के प्रहार सहे, शिशुपाल के भी दुर्वचन सहे, परन्तु फिर भी वे शान्त रहे।

युवको! इन जीवनियों से प्रेरणा लो और सहनशील बनो। सहनशीलता की प्रशंसा करते हुए महात्मा विदुर जी कहते हैं—

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्॥

(विदुर प्रजागर ३४। ४८)

सुन्दर वस्त्रधारी सभा को जीत लेता है अर्थात् सभा में आदर और सम्मान पाता है। जिसके पास गौएँ होती हैं वह पायस और मिष्टान्न को जीत लेता है। जिसके पास गाड़ी होती है वह मार्ग को जीत लेता है। जो सहनशील होता है वह सब-कुछ जीत लेता है। अतः सहनशील बनो!

सहनशील व्यक्ति के लिए संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। श्री भर्तृहरि जी ने कितना सुन्दर लिखा है—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्यांगेऽखिल लोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

(नीति १०६)

जिसके हृदय में विश्वविमोहक सहनशीलता विराजमान है उसके लिए अग्नि जल के समान शीतल, समुद्र छोटी नदी-सा, मेरु पर्वत पत्थर के खण्ड के समान, सिंह हरिण के समान, सर्प पुष्पों का हार और विष अमृत के समान हो जाता है।

मूर्खों के दुर्व्यवहार और कटु वचनों को सहन करो। उनके ऊपर तरस खाओ। उनसे बदला लेने और उन्हें कष्ट देने की बात मत सोचो।

एक नौका में कुछ यात्री यात्रा कर रहे थे। एक साधु भी एक कोने में बैठे थे। कुछ दुष्टों ने साधु को छेड़ा, उन्हें तंग किया परन्तु साधु जी मौन ही रहे। इससे दुष्टों का उत्साह दुगुना हो गया। उन्होंने सन्त जी को डराया, धमकाया और अन्त में पीटा भी। मल्लाहों को साधु पर दया और दुष्टों पर क्रोध आया। उन्होंने सन्त जी से निवेदन किया, "आप आज्ञा दें तो हम इन्हें डुबा दें!" साधु ने कहा, "नहीं, ऐसा न करो। इन्होंने अज्ञानवश ऐसा किया है।"

कैसी अद्भुत सहनशीलता है!

आज डालडा खाने के कारण सहनशीलता समाप्त हो गई है। न अध्यापकों में सहनशीलता है न शिष्यों में, न दुकानदारों में सहनशीलता है और न ग्राहकों में। आज तो बात-बात पर

क्रोध आता है। यात्री कण्डक्टर से लड़ पड़ता है और कण्डक्टर यात्रियों से। सभाओं, समाजों और गोष्ठियों में "तू-तू, मैं-मैं" होकर लड़ाई तक हो जाती है। सभाओं, समाजों और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहनशीलता की बड़ी आवश्यकता है। असहनशीलता और क्रोध को त्यागकर ऐसे सहनशील बनो कि वेद के शब्दों में आप यह घोषणा कर सकें—

अहमस्मि सहमानः। (अथर्व १२। १। ५४)

अरे! मैं तो अत्यन्त सहनशील हूँ।

□

दानी बनो !

सभी मतों, पन्थों और ग्रन्थों में दान देने की महिमा भरी हुई है। वेद तो यहाँ तक कहते हैं—

न तवको अस्ति (ऋ० १० । ११७ । ४)

अदाता का घर घर ही नहीं है।

अथर्ववेद ३ । २४ । ५ में तो यहाँ तक कह दिया है—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।

हे मानव ! तू सैकड़ों हाथों से कमा और हजारों हाथों से दान कर।

युवको ! आप भी दान देकर दानी बनो और दानी भी कैसे ? कविवर रहीम जैसे—

रहीम एक नवाब थे। वे प्रतिदिन दान दिया करते थे। दान देने का नियम यह था कि रुपये-पैसों की ढेरी लगा लेते थे और आँखें नीची करके उस ढेर में से मुट्ठी भर-भरकर याचकों को देते जाते थे। एक दिन गंग कवि भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि एक याचक दो-तीन बार ले चुका है परन्तु रहीम फिर भी उसे दे रहे हैं। यह दृश्य देखकर गंग कवि ने पूछा—

सीखे कहाँ नवाबजू देनी ऐसी देन ?
ज्यों ज्यों कर ऊँचे चढ़ें त्यों त्यों नीचे नैन ।।

तब रहीम ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—

देने हारा और है जो देता दिन रैन।
लोग भरम हम पै करें या विधि नीचे नैन ।।

दान दो और नम्रतापूर्वक दो। कुढ़कर, जलकर, खीजकर और दु:खी होकर मत दो। गीता में क्या सुन्दर कहा है—

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

(गीता० १७। २८)

हे अर्जुन! अश्रद्धा से किया हुआ यज्ञ, दान, तप और जो कुछ कर्म किया जाता है वह सब व्यर्थ है। श्रद्धारहित कर्म का न इस लोक में फल मिलता है और न परलोक में।

इसी भाव को एक व्यक्ति ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

Give with faith, if you lack faith give nothing.

श्रद्धापूर्वक दो। यदि श्रद्धा नहीं है तो कुछ भी मत दो।

"**हस्तस्य भूषणं दानम्।**" हाथ का भूषण कङ्कण नहीं है अपितु दान है। अतः दान दो, दानी बनो।

दान की महिमा का वर्णन करते हुए महात्मा विदुर जी कहते हैं—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥

(विदुर प्रजागर ३३। ६०)

इन दोनों व्यक्तियों के गले में दृढ़ पत्थर बाँधकर जल में डुबा देना चाहिए—दान न देनेवाले धनिक को और तप = परिश्रम न करनेवाले दरिद्र को।

यह धन सदा किसी के पास रहता नहीं। भर्तृहरि जी कहते हैं—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

(नीति० ४२)

दान, भोग और नाश—धन की तीन ही गतियाँ हैं। जो न तो धन का दान करता है और न उसे अपने उपभोग में लेता है उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् नष्ट हो जाता है।

प्रिय युवको ! आप कहेंगे कि हमारे पास धन नहीं; हम कमाते नहीं। हम कहाँ से दें ? चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। आपको जो कुछ जेब-खर्च मिलता है उसमें से ही कुछ देने का स्वभाव डालिये। और सुनिये, एक कवि के शब्दों में आपके पास देने के लिए कितना कुछ है—

प्रेम पड़ोसी को दो, मित्र को सत्य हृदय दो।
मानहीन को मान, भीत को सदा अभय दो॥
भक्तिपूर्ण मन से दो पिता को आदर।
भाई बहनों को दो ज्यादा सम्पत्ति सादर॥
शुभ आचरण स्वयं को दो बच्चों को शिक्षा।
दीन जनों को दो उनका हक़ समझ सुभिक्षा॥
अपने को इज्जत दो, सेवा दो जन-जन को।
प्रभु के पावन चरणों में दो निज मन को॥

एक अन्य कवि ने भी कितना सुन्दर कहा है—

तन से सेवा कीजिये, मन से भले विचार।
धन से इस संसार में करिये पर-उपकार॥

एक बार एक धुनिया महर्षि दयानन्द के पास गया और बोला, "महाराज ! मैं ग़रीब हूँ, दान नहीं दे सकता, मेरा उद्धार कैसे होगा ?" स्वामी जी ने सान्त्वना देते हुए कहा, "जिसकी जितनी रुई लो, धुनकर उतनी ही लौटा दो। ईमानदारी से कार्य करो ! यदि कुछ दे नहीं सकते तो मन से ही दूसरों की भलाई की भावना करो, इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।"

आप भी दूसरों के लिए मंगल-कामना तो कर ही सकते हैं। यदि किसी को कुछ दे नहीं सकते तो किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और घृणा की भावना तो मत रक्खो।

दान देने से स्वार्थ-बुद्धि दूर होकर आत्मा का विकास होता है, अतः आपकी सदा यह भावना होनी चाहिये—

दत्तान्मा यूषम्।

(अ० ६। १२३। ४)

मैं दान देना कभी न छोड़ूं।

□

: ९ :

स्वाध्यायशील बनो !

वैदिक धर्म में स्वाध्याय की महिमा पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। हमारे वेद, उपनिषद्, स्मृति, दर्शनशास्त्र और ब्राह्मण-ग्रन्थ स्वाध्याय की महिमा से भरे पड़े हैं। वेद में कहा गया है—

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥

(ऋ० ९। ६७। ३१)

जो सबको पवित्र करनेवाली, ईश्वर-प्रदत्त और ऋषियों द्वारा संचित ऋचाओं का अध्ययन करता है, वह पवित्र आनन्द-रस का पान करता है।

प्राचीन ऋषियों और महर्षियों ने भी स्वाध्याय करने पर बड़ा बल दिया है। उन्होंने इसे बहुत बड़ा तप माना है। इस स्वाध्याय के लिए लोग अपने प्राणप्रिय पुत्र और पुत्रियों को नगर और ग्रामों से दूर जंगलों में बैठा दिया करते थे।

मानव-जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है। उसमें से तीन आश्रमों—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास में तो केवल स्वाध्याय ही होता था। गृहस्थ के लिए भी स्वाध्याय आवश्यक कर्त्तव्य था। तभी तो आचार्य दीक्षान्त-भाषण देते हुए अपने स्नातकों से कहता था—

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

(तैत्तिरीयोपनिषद् ११। १)

स्वाध्याय और वेदोपदेश में कभी प्रमाद न करना।

स्वाध्याय जीवन के लिए है भी परमावश्यक। जिस प्रकार शारीरिक उन्नति के लिए भोजन आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार आत्मिक उन्नति के लिए स्वाध्याय भी आवश्यक और अनिवार्य है। स्वाध्याय से विचारों में पवित्रता आती है, ज्ञान की वृद्धि होती है। यदि किसी तालाब में पानी आना बन्द हो जाय तो उसमें कीड़े पड़ने लग जाते हैं। उसके ऊपर काई छा जाती है, पानी सड़ने लगता है और उसमें बदबू आने लगती है। ठीक इसी प्रकार स्वाध्याय के अभाव में हमारी मानसिक वृत्तियाँ कलुषित एवं दूषित हो जाती हैं। हमारा ज्ञान सीमित हो जाता है और हम कूप-मण्डूक बन जाते हैं। यदि प्रतिदिन एक घण्टा भी स्वाध्याय किया जाय और एक घण्टे में २० पृष्ठों का पाठ हो तो एक मास में ६०० पृष्ठों का एक ग्रन्थ पढ़ा जा सकता है। तनिक सोचिये, इस प्रकार स्वाध्याय करने से आपके ज्ञान में कितनी वृद्धि होगी !

स्वाध्याय के बल पर एक साधारण व्यक्ति महान् बन सकता है। स्वाध्याय के बल पर अनेक व्यक्ति उच्च कोटि के विद्वान् बन गये। यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

वरमौण्ट (अमेरिका) में एक मोची था। नाम था चार्ल्स सी फ्रास्ट। उसने अपने कार्य के व्यस्त क्षणों से प्रतिदिन एक घण्टा बचाकर दस वर्ष तक नियमपूर्वक गणित का अध्ययन किया। केवल एक घण्टा प्रतिदिन स्वाध्याय करने के आधार पर वह दस वर्ष में ही उच्च कोटि का गणितज्ञ बन गया।

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० क्षेमकरण दास जी ने ५५ वर्ष की अवस्था में संस्कृत पढ़ना आरम्भ करके अथर्ववेद पर भाष्य किया जो आज भी सर्वोत्तम माना जाता है।

मैं स्वयं भी किसी गुरुकुल आदि में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सका। मैं जो-कुछ सीख पाया हूँ उसका श्रेय स्वाध्याय और श्रवण को ही है।

कैसे ग्रन्थों का अध्ययन करें? हमें उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। स्वामी शिवानन्द जी ने एक स्थान पर लिखा है—

"सद्ग्रन्थ इस लोक के चिन्तामणि हैं। उनके अध्ययन से सब चिन्ताएँ मिट जाती हैं। संशय-पिशाच भाग जाते हैं और मन में सद्भाव जागृत होकर परम शान्ति प्राप्त होती है।"

श्री लोकमान्य तिलक जी का कहना है—

"मैं नरक में भी अच्छी पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी वहाँ स्वर्ग बन जायेगा।"

वेद संसार-साहित्य का मुकुटमणि है। संसार के पुस्तकालय में वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है। न केवल भारतीय विद्वानों ने, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेद की श्रेष्ठता के गीत गाये हैं। वेद-अध्ययन से मनुष्य बड़े-बड़े पापों से बच जाता है। यह बात यथार्थ है। इसे सिद्ध करने के लिए युक्ति और प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। संसार के समस्त पापों की जड़ है मन की अपवित्रता। स्वाध्याय के द्वारा मन धुलकर शुद्ध और पवित्र हो जाता है, फिर मनुष्य पापों की ओर कैसे झुक सकता है?

अनार्ष, गन्दे तथा भद्दे उपन्यास और नाटक पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है। इनसे मनुष्य का कल्याण नहीं होता, अपितु पतन होता है। जीवन पवित्र करनेवाले, आत्मा का कल्याण करनेवाले ग्रन्थों को पढ़िये। संसार के महापुरुषों के जीवनों का अध्ययन कीजिये। उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत

का स्वाध्याय कीजिये। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार-विधि और व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों को पढ़िये। जहाँ तक बन सके, आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिये। महर्षि दयानन्द के शब्दों में "आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक ग़ोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।"

देश की विभूतियो! यदि आप महान् बनना चाहते हैं, ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, नाना विद्याओं में पारंगत होना चाहते हैं तो एक बात सदा स्मरण रक्खो, "**स्वाध्यायान् माप्रमदः।**" स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करो। प्रतिदिन स्वाध्याय करने को अपने जीवन का अंग बना लो।

□

: १० :

सत्संगी बनो !

सत्संग की महिमा महान् है। वैदिक वाङ्मय सत्सङ्ग की महिमा से ओत-प्रोत है। वेद कहता है—

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।

(अ० १०।८।१५)

पूर्ण विद्वानों, योगियों, महात्माओं के साथ रहने से मनुष्य उन्नत होता है और आचारहीन लोगों के सम्पर्क में रहने से गिर जाता है, पतित हो जाता है।

इसी भाव को संस्कृत के एक कवि ने यूं प्रकट किया है—

यदि सत्संगनिरतो, भविष्यसि-भविष्यसि।

अथ दुर्जनसंसर्गे, पतिष्यसि-पतिष्यसि॥

यदि सत्संगी बनोगे तो आपके जीवन का निर्माण होगा ही होगा, आप कुछ बन जायेंगे; यदि कुसंग में पड़ गये तो पतित हो जाओगे।

सत्संग की महिमा का अनुभव करके भगवान् शंकराचार्य जी ने ठीक ही कहा था—

संगःसत्सु विधीयताम्। (उपदेश पञ्चक-२)

अर्थात् सज्जनों का सत्संग करो।

सत्संग की प्रशंसा करते हुए महर्षि नारद जी कहते हैं—

महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।

(ना० भक्तिसूत्र ३।६)

महापुरुषों का संग दुर्लभ, अपार महत्त्ववाला और कभी निष्फल जानेवाला नहीं है ।

चाणक्य महाराज कहते हैं—

सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानाम् !

(चा० नीति १२ । ७)

सत्संग से दुष्ट एवं दुर्जन पुरुषों में भी सज्जनता आ जाती है ।

सत्संग की महिमा का गौरव-गान करते हुए श्री भर्तृहरि जी ने भी बहुत सुन्दर कहा है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

(नीतिशतक २२)

सत्संग बुद्धि की जड़ता को हरता है, वाणी में सत्य का संचार करता है, सम्मान बढ़ाता है, पाप को दूर करता है, चित्त को आनन्दित करता है और समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करता है । सदाचारी पुरुषों की संगति मनुष्य का कौन-सा उपकार नहीं करती !

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी एक बहुत सुन्दर बात कही है—

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई ।
पारस परस कुधातु सुहाई ॥

जिस प्रकार पारस पत्थर को छूकर लोहा सोना हो जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों के संग से मूर्ख भी सुधर जाता है । इस विषय में एक शिक्षाप्रद दृष्टान्त है—

एक बार श्री विष्णु जी ने महाराज बलि से प्रश्न किया, "तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना पसन्द करोगे या दुष्ट और मूर्खों के साथ स्वर्ग में ?"

"मुझे सज्जनों के साथ नरक में जाना ही पसन्द है।"

श्री विष्णु जी ने पूछा, "इसका कारण ?"

बलि ने कहा, "जहाँ सज्जन हैं वहीं स्वर्ग है और जहाँ दुर्जन हैं वहीं नरक है। दुर्जन के निवास से स्वर्ग भी नरक बन जाता है और सज्जन लोग नरक को भी स्वर्ग में परिवर्तित कर देते हैं। सज्जन लोग जहाँ रहेंगे, वहाँ सब-कुछ रहेगा।"

मानव-जीवन को उन्नति के शिखर पर स्थापित करने के लिए सत्संग एक प्रमुख साधन है। भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि सत्संग के प्रभाव से मूर्ख कालिदास उच्च कोटि का कवि बन गया। महर्षि दयानन्द का सत्संग पाकर एक शराबी-कबाबी और वेश्यागामी तहसीलदार महात्मा अमीचन्द बन गया। आर्यसमाज के सत्संग से मुगला डाकू लूटमार छोड़कर सदाचारी बन गया। सत्संग से जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन के ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं।

मनुष्यों की तो बात ही क्या, संग का प्रभाव तो पशु और पक्षियों पर भी होता है। कहते हैं कि एक राजा घोड़े पर सवार वन में जा रहे थे। जब वे डाकुओं की बस्ती के पास से निकले तब द्वार पर पिंजरे में बन्द एक तोते ने चिल्लाना आरम्भ किया, "दौड़ो ! पकड़ो ! मार डालो ! इसका घोड़ा छीन लो !"

महाराज सावधान हो गये। उन्होंने घोड़ा दौड़ा दिया और एक रम्य आश्रम के पास पहुँचे। कुटी के सामने पिंजरे में लटके एक तोते ने कहा, "आइये ! पधारिये ! आपका स्वागत है !"

एक मुनि कुटी से बाहर आये और महाराज का स्वागत

किया। राजा ने पूछा, "मुनिवर ! एक ही जाति के पक्षियों में इतना अन्तर क्यों ?" यह सुनकर तोता बोला—

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि,
शृणोत्ययं यद् यवनस्य वाक्यम्।
न चास्य दोषो न च मे गुणो वा,
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति॥

मैं मुनियों के वचन सुनता हूँ और वह हिंसक भीलों की बातें सुनता है। न उसमें कोई दोष है, न मेरे में कोई गुण है। दोष और गुण तो संगति से उत्पन्न होते हैं।

बुरी संगति में बैठनेवाला व्यक्ति भी बुरा कहलाता है। इसीलिए तो इमरसन महोदय ने कहा है—It is better to be alone than in a bad company. दुष्टों के साथ रहने की अपेक्षा अकेला रहना अधिक उत्तम है।

सत्संग परम पवित्र तीर्थ है। सत्संग से मन शुद्ध, पवित्र और सात्त्विक बनता है। यह मन को विषय-विकारों से हटाकर प्रभु की ओर प्रेरित करता है। सत्संग त्रिविध तापों को दूर करके जीवन को निर्मल बनाता है, अतः सत्संगी बनो !

□

: ११ :

माता-पिता की सेवा करो !

यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा, "पृथिवी से भारी क्या है ? और आकाश से भी ऊँचा कौन है ?" युधिष्ठिर जी बोले—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा ।

(महा० वन० ३१३।६०)

अर्थात् माता पृथिवी से भी भारी है और पिता आकाश से भी ऊँचा है ।

यह है माता-पिता का गौरव और महत्त्व । वस्तुतः माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है । इतना ही नहीं, मैं तो माता-पिता को ईश्वर के जीवित-जागृत प्रतिनिधि समझता हूँ । हमें जन्म देनेवाले, हमारा लालन, पालन और पोषण करनेवाले माता और पिता की हमें हर प्रकार से सेवा करनी चाहिये ।

युवको ! प्राचीन समय में आयु दीर्घ होती थी । क्यों ? पता है आपको ? इसलिए कि उस समय लोग अपने माता-पिता को प्रतिदिन प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया करते थे । आज का युवक तो माता-पिता को नमस्ते करने में भी लज्जा का अनुभव करता है, फिर दीर्घायु कैसे हो ? यदि आप दीर्घायु चाहते हैं, संसार में अपना मान और सम्मान चाहते हैं, यदि आपको यश और बल की इच्छा है तो अपने माता-पिता और वृद्धों की सेवा करो । मनु जी महाराज कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

(मनु० २ । १२१)

जो व्यक्ति माता-पिता और वृद्धों को नमस्ते करते हैं तथा उनकी सेवा करते हैं उनके आयु, विद्या, यश और बल चार पदार्थ बढ़ते हैं ।

पाठकगण ! आपने श्रवणकुमार का नाम तो अवश्य ही सुना होगा । माता-पिता की सेवा का आदर्श आप श्रवण-कुमार से सीखें । अपने माता-पिता की सेवा के लिए उन्होंने भयंकर कष्टों और आपत्तियों की तनिक भी चिन्ता नहीं की; माता-पिता के आदेश पर उन्हें बहँगी में बिठाकर तीर्थयात्रा पर चल दिये । पैदल चलना, पशुओं का भय और माँगकर खाना—इस प्रकार की कितनी ही यातनाएँ उन्होंने झेलीं । परन्तु उन्होंने माता-पिता की सेवा से मुख नहीं मोड़ा । माता-पिता की सेवा करते हुए ही उन्होंने अपने प्राणों का त्याग किया । आप सारे संसार के इतिहास का अध्ययन कर जाइये, आपको पितृभक्ति का ऐसा आदर्श उदाहरण और कहीं नहीं मिलेगा ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम भी आदर्श पितृभक्त थे । गोस्वामी तुलसीदास जी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है—

प्रातकाल उठिके रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

पिता के तनिक-से संकेत पर श्री राम राजपाट को छोड़कर वनों में चले गये ।

महात्मा भीष्म ! उनका त्याग क्या किसी से कम है ?

अपने पिता की इच्छा-पूर्ति के लिए आपने भीष्म प्रतिज्ञा की

कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करूँगा। तभी तो आप देवव्रत से भीष्म बने।

ये जीवनियाँ हमें माता-पिता की सेवा करने का पाठ पढ़ा रही हैं। ये जीवनियाँ हमें उद्‌बोधन दे रही हैं और हमारा मार्ग-प्रदर्शन कर रही हैं। हमें भी इन्हीं आदर्शों पर चलकर माता-पिता की सेवा करनी चाहिए।

माता-पिता की सेवा से सब-कुछ मिल सकता है। इस विषय में एक घटना उल्लेखनीय है। एक बार एक युवक श्री रामकृष्ण-परमहंस जी के पास पहुँचा और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। उन्होंने मुस्कराकर पूछा, "क्या तुम अकेले हो? तुम्हारे घर में कोई नहीं?"

"बस, एक बूढ़ी माँ है महाराज!"

"फिर तुम दीक्षा लेकर संन्यासी क्यों बनना चाहते हो?"

"मैं इस संसार को त्यागकर मोक्ष चाहता हूँ।"

परमहंस जी ने बड़े प्रेम से समझाकर कहा, "बेटा! अपनी बूढ़ी माँ को असहाय छोड़कर मोक्ष नहीं मिल सकता। जाओ, दिल लगाकर अपनी माता की सेवा करो! इसी में तुम्हारा कल्याण है, इसी से तुम्हें मोक्ष मिल जायेगा।"

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है—

If the mother is pleased and the father, God is pleased with the man. That child is really a good child who never speaks harsh words to his parents.

जिस व्यक्ति से माता-पिता प्रसन्न हैं, प्रभु भी उससे प्रसन्न है। वही बच्चा वास्तव में अच्छा बालक है जो अपने माता-पिता को कभी दुर्वचन नहीं कहता।

माता-पिता के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करो। वेद

के इस आदेश को सदा सम्मुख रखो—

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया ।।

(यजु० १९ । ११)

जब मैं छोटा था, असमर्थ शिशु था, उस समय जिस स्नेह-मयी माता की गोद में लेटकर और प्रसन्न होकर जिसके अमृत-मय स्तन का पान करता रहा, तथा पैरों के आघात से उसे पीड़ित करता रहा, उसके लालन-पालन से अब मैं बड़ा हो गया हूँ और वे मेरे पूजनीय जननी और जनक अब बूढ़े और अशक्त हो गये हैं। अतः मेरे द्वारा वे माता-पिता अब किसी प्रकार पीड़ित न हों, अपितु सेवा द्वारा सन्तुष्ट और प्रसन्न ही रहें। इस प्रकार प्रभो ! उनकी प्रसन्नता और सेवा द्वारा मैं उऋण हो रहा हूँ।

□

: १२ :

ईश-भक्त बनो !

जब हम संसार पर दृष्टि डालते हैं तब हमें संसार में एक सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, बुद्धिमान् प्राणी दिखाई देते हैं और सर्वत्र एक ऋत और सत्य का नियम दिखाई देता है। ढाक में तीन पत्ते, ब्रह्मी में एक ही पत्ता और करील में पत्तों का न होना, जवासे और आक का वसन्त ऋतु में सूख जाना—यह सब अपने-आप ही तो नहीं हो सकता ! इन सब के पीछे एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ शक्ति होनी ही चाहिए, जो इस सारे ब्रह्माण्ड को अपने शासन में रखती है, जो सारे ब्रह्माण्ड को नियम में रखकर सुव्यवस्था से चलाती है।

हम ईश्वर को इसलिए नहीं मानते कि हमारे पूर्वज उसे मानते थे। हम तो ईश्वर को इसलिए मानते हैं कि संसार का एक-एक अणु उसकी शक्ति और ज्ञान की गवाही दे रहा है। घड़ी के पुर्जों की भाँति सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे और सितारों की गति किसी नियन्ता की ओर संकेत करती है। नाना प्रकार के वृक्ष, उनमें लगनेवाले भाँति-भाँति के फूल, फल और पत्तियों के विविध डिज़ाइन किसी महान् कलाकार का परिचय देते हैं। मिट्टी और पानी से उत्पन्न चमेली एवं चम्पा, गुलाब और गेंदा, मोगरा तथा रात की रानी की मनमोहक सुगन्ध किसी गन्धी का पता बताती है। मल और मूत्र से पोषित आम, अमरूद, अनन्नास, लीची, जामुन, सन्तरे, गन्ने और अंगूर किसी कैमिस्ट की कहानी कहते हैं। नवजात बच्चों के प्रति उनकी माता में

प्रम और दया का संचार किसी के स्नेह और कृपा की घोषणा करता है। द्युलोक का एक-एक नक्षत्र, भूमि का एक-एक कण, लताओं और वृक्षों की एक-एक पत्ती, फूलों की एक-एक पंखड़ी, फलों का एक-एक दाना उसकी विद्या और कारीगरी का प्रमाण देते हैं। इन्हीं प्रमाणों के बल पर हम उसे जानते और मानते हैं।

ईश्वर की अद्भुत रचना के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने भी कितने सुन्दर शब्दों में लिखा है—

"देखो ! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीवन का संयोजन, शिरोरूप मूल-रचन, लोम-नखादि का स्थापन, आँख का अतिसूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के भोगों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान-विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभाग-करण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना ईश्वर के कौन कर सकता है ?"   (सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समु०)

इस सारे ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ईश्वरीय शक्ति ही कार्य कर रही है। वह ईश्वर हमारे नथुनों में स्वास है, आँखों में ज्योति है तथा वाणी में माधुर्य है। क्या संसार का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक एक आँख, कान या नाक बना सकता है ? फिर क्या वह उसमें देखने, सुनने और सूँघने तथा श्वास लेने की शक्ति डाल सकता है ? क्या कोई मानस-शास्त्री एक मन बनाकर दे सकता है ? कभी नहीं। अतः हमें विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है कि इस सृष्टि-रचना के पीछे कोई महान् और अद्भुत शक्ति कार्य कर रही है। बस, इसी शक्ति का नाम ईश्वर है।

जिस परमात्मा ने इस संसार के सारे पदार्थ मनुष्यों के कल्याण के लिए दे रक्खे हैं, हमें कृतज्ञता के रूप में उसकी भक्ति और उपासना करनी चाहिये। ईश्वर के स्थान पर अन्य किसी की पूजा न करो, एक ईश्वर के उपासक बनो। वेद का आदेश है—

एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः (अ० २ । २ । १)

एक ईश्वर ही पूजनीय है, केवलमात्र वही एक उपास्य देव है।

जो मान और सम्मान ईश्वर के लिए है वह और किसी को मत दो। ईश्वर के स्थान पर किसी देवी-देवता और जड़-मूर्ति की पूजा मत करो।

आज के वातावरण में पढ़े-लिखे विद्यार्थी ईश्वर को एक ढकोसला समझते हैं। "खाना, पीना और मौज उड़ाना"—इसको ही वे अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति केवल परलोक, परमार्थ को ही सब-कुछ समझते हैं। ये दोनों अवस्थाएँ ठीक नहीं। जो व्यक्ति न इस लोक को बनाते हैं न परलोक को बनाते हैं, वे तो अन्धों के सदृश हैं। जो लोग इहलोक या परलोक में से एक को बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे मानो काणे हैं। जो दोनों लोकों को साथ-साथ रखते हैं, वे ही वस्तुत: सुनयन=दोनों आँखोंवाले हैं। ईश-भक्त बनने के लिए संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। संसार में रहते हुए, संसार के कार्य करते हुए ईश्वर-भक्ति करो, उसका ध्यान और उसकी उपासना करो। वेद कहता है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।

(ऋ० १ । १६४ । ३७)

जो उसे—ईश्वर को नहीं जानता, उसे वेदों से भी क्या लाभ होगा ? ईश्वर को जानो। उसकी भक्ति करो। जिसके जीवन में ईश्वर के लिए प्रेम नहीं, राग ग्रौर ग्रनुराग नहीं, ईश्वर को प्राप्त करने की ग्रभिलाषा ग्रौर कामना नहीं, उसके ग्रौर पशु के जीवन में ग्रन्तर ही क्या है ?

ईश्वर की भक्ति कैसे करें ? ग्राप प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक सन्ध्या करें। ईश्वर के गुणों पर विचार करें ग्रौर उन्हें ग्रपने जीवन में धारण करने का प्रयत्न करें। दु:खियों को देखकर उनकी सेवा करें। दीन, दुर्बल ग्रौर निर्बलों की सेवा, ग़रीब को भोजन ग्रौर रोगी की चिकित्सा ईश्वर की सच्ची पूजा है।

सन्ध्या, भजन ग्रौर भक्ति में यदि ग्रारम्भ में रस न ग्राये तो निराश ग्रौर हताश होने की ग्रावश्यकता नहीं। रामकृष्ण-परमहंस के शब्दों को याद रक्खो—

"समुद्र में ग़ोता लगाने पर यदि मोती हाथ न लगें तो यह न कहो कि समुद्र में मोती नहीं हैं। बार-बार ग़ोते लगाकर मोती ढूंढो, तब सफलता मिलेगी। ईश्वर-प्राप्ति के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। यदि तुम्हारा प्रथम प्रयास निष्फल हो तो ग्रधीर न हो जाग्रो। निरन्तर प्रयत्न करते रहो; ग्रन्त में ईश्वर की कृपा ग्रवश्य होगी।"

प्रतिदिन ग्रपने जीवन की पड़ताल करते हुए ग्रपने कार्यों की सूची में सबसे पूर्व ईश्वर-भक्ति को ढूंढो। यदि ग्रापके जीवन में ईश्वर-भक्ति है तो ग्रपने को सम्राटों से भी बढ़कर सौभाग्यशाली समझो।

□

: १३ :

दुर्गुण त्यागो !

प्रिय युवको ! किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

आदमी को चाहिये दुनिया में रहना इस तरह।
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल ॥

जिस प्रकार कमल अथाह जलराशि में रहते हुए भी पानी की एक बूंद भी अपने में ग्रहण नहीं करता, इसी प्रकार इस संसार में रहते हुए इसकी एक भी बुराई को अपने जीवन में मत आने दो। जब दुर्गुण, दुर्व्यसन, कुभावना, कुवासना, दुरित और खोटे तथा गन्दे विचार आपके मन में आने लगें और आपको सताने लगें तो वेद के शब्दों में उन्हें ललकारकर कह दो—

परोपेहि मनस्पाप ! किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर
गृहेषु गोषु मे मनः ॥ (अथर्व० ६। ४५। १)

ओ मेरे मन के पाप ! दूर भाग जा ! क्यों मुझे गन्दी सलाह दे रहा है ? क्यों मुझे कुमार्ग की ओर ले-जा रहा है ? दूर हट, मैं तुझे नहीं चाहता। तू वृक्षों के पास जा। तू वन में जाकर विचर। मेरा मन तो गायों की देखभाल और गृह-कार्यों में लगा हुआ है।

बुराइयों से बचने के लिए हर समय अपने-आपको कार्य में व्यस्त रखो क्योंकि An idle man's brain is the devil's workshop. निठल्ले बैठे रहने से बुराइयाँ सूझती हैं। अतः शहद

की मक्खी की भाँति हर समय कुछ-न-कुछ करते रहिये । साथ ही प्रभु से प्रार्थना कीजिए—

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः । (यजु० ४० । १६)

प्रभो ! हमसे कुटिलता-युक्त पाप को दूर कर दीजिये ।

प्रभु से प्रार्थना के साथ-साथ स्वयं भी पुरुषार्थ कीजिये । सेण्ट एण्टानियस ने इस सम्बन्ध में एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है—

If every year you rooted out one of your faults, you would soon become a perfect man.

अर्थात् यदि आप प्रतिवर्ष एक-एक बुराई को भी दूर करें तो शीघ्र ही आप एक पूर्ण मनुष्य बन जाओगे ।

आरोह तमसो ज्योतिः । (अ० ८ । १ । ८)

अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुर्गुणों से सद्गुणों की ओर चलो । और

कस्य मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ॥

(अ० १८ । ३ । १७)

आत्मा की चलनी में अपने-आपको शुद्ध बनाकर, मलों को हटाकर, दुर्गुणों को त्यागकर नवीन दीर्घ-जीवन को प्राप्त करो ।

महात्मा बुद्ध ने लिखा है—

"जिस प्रकार सुनार सोने और चाँदी के मैल को निकाल देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यों को दुर्गुणों की मैल को अपने हृदय से धीरे-धीरे निकालते रहना चाहिये ।"

महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग करें ।"

दूसरों के दुर्गुण देखने में मत लगे रहो। अपने जीवन को देखो। एक बार साबरमती आश्रम में एक आश्रमवासी से कुछ अपराध हो गया। एक दर्शक ने एक गुमनाम पत्र लिखकर उसके पापाचरण की शिकायत गांधी जी से की। प्रार्थना के पश्चात् गांधी जी प्रायः कुछ कहा करते थे। प्रार्थना पूरी होने के पश्चात् उस दिन उन्होंने उस पत्र का उल्लेख करते हुए कहा, "एक तो ऐसे मामलों में गुमनाम पत्र लिखना ही ग़लत है। फिर किसी के पाप की ओर अंगुली उठाने से पूर्व हमें यह याद रखना चाहिये कि शेष तीन अंगुलियाँ स्वयं अपनी ओर संकेत करती हैं।"

हमें तो कपास के समान बनना चाहिये जो दूसरों के शरीर की नग्नता को ढकने के लिए अपने-आपको पिलवाती है। सज्जनों को भी कष्ट सहकर दूसरों के दोषों को ढकने का प्रयत्न करना चाहिये।

बुराई को तुरन्त छोड़ देना चाहिये। कुछ व्यक्ति शिकायत करते हैं कि अब तो यह स्वभाव पड़ गया; अब इसका छूटना या बदलना कठिन है। परन्तु यह बात ठीक नहीं। एक कवि ने क्या खूब कहा है—

बनी जो चीज है इस खाक से वह टूट जाती है।
करो कोशिश कमर कसकर, पड़ी लत छूट जाती है॥

शान्त, एकान्त स्थान में बैठकर अपने जीवन का स्वाध्याय करो, अपने जीवन पर दृष्टिपात करो। अपने अवगुणों को देखो। उन्हें एक दैनन्दिनी = डायरी में लिखो। प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी डायरी रखनी चाहिये। आप अनेक प्रकार की दैनन्दिनियाँ रखते हैं, दूध की डायरी, धोबी की डायरी, घरेलू हिसाब की डायरी। परन्तु इन सबसे महत्त्वपूर्ण है आध्यात्मिक दैनन्दिनी, जो आपके जीवन को दिव्य बनाकर आपको प्रभु की ओर बढ़ने

की प्रेरणा देगी। मैं कब उठा ? कब सोया ? कितना स्वाध्याय किया ? ब्रह्मचर्य का कितना पालन किया ? कौन-से दुर्गुण को छोड़ा ? कौन-से गुण को ग्रहण किया ? अपने दुर्गुणों को दूर करने के लिए इस प्रकार की डायरी रक्खो। दैनिक डायरी लिखने से टॉलस्टॉय 'महात्मा टॉलस्टॉय' बने थे।

युवको ! सावधान ! जीवन-रूपी भवन के किसी भी द्वार से काम, क्रोध, लोभ, मोह-रूपी चोरों को अन्दर न घुसने दो। जो दुरित, दुर्गुण, त्रुटियाँ और बुराइयाँ पहले घुसी बैठी हैं उन्हें दृढ़ता, वीरता और धैर्य से बाहर निकाल फेंको।

□

: १४ :

चरित्रवान् बनो !

उत्तम चरित्र एक दिव्य-शक्ति और महान् सम्पत्ति है। चरित्र क्या है ? चरित्र संस्कृत का एक शब्द है। चर् धातु से चरित्र शब्द बनता है। चर् का अर्थ है गति एवं आचरण। अतः चरित्र का अर्थ हुआ आचरण करना। श्रेष्ठ एवं शुभ-आचरण का नाम चरित्र है। चरित्र छोटा-सा शब्द है, परन्तु इसमें संसार के सभी शुभ-गुणों और कर्मों का समावेश हो जाता है। सत्य-वादिता, दयालुता, कोमलता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सदाचार, निर्भयता, शौच, सन्तोष, तप और दान आदि सभी उत्तम कर्म चरित्र की सीमा में आ जाते हैं।

महापुरुषों के आदर्श को सम्मुख रक्खो और चरित्रवान् बनो। महाराज शिवाजी के सैनिकों ने एक दुर्ग पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। उस दुर्ग से एक अत्यन्त सुन्दरी यवन-बाला भी उनके हाथ लगी। सेनापति ने उसे शिवाजी के समक्ष उपस्थित करके राजरानी बनाने की विनय की। सेनापति की बात सुनकर शिवाजी ने कहा, "सेनापते ! तुम्हें धिक्कार है ! तुम्हारा धर्म पर-नारी-हरण नहीं, पर-नारी-रक्षण है।" फिर वे उस रमणी की ओर देखकर बोले, "माता ! रूप के वशीभूत होकर मेरे सैनिक तुम्हें यहाँ ले आये हैं। इसके लिए मुझे क्षमा करना। तुम्हारे सुन्दर रूप को देखकर मेरे मन में तो यह भाव उठ रहा है कि यदि मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म ग्रहण करता तो मेरा रूप अधिक सुन्दर

होता। इसी भाव को श्री मञ्जुल जी ने एक कविता के रूप में यूं प्रकट किया है—

शिवा-शिविर में सेनापति
सुन्दरी यवन बाला लाया।
बोले शिवा 'कुकृत्य अरे यह !
पामर ! धिक् !' वह थर्राया ॥
'जन्म तुम्हीं से यदि मैं पाता
तो होता सुन्दर छविमान्'।
साश्रु नयन सब गद्गद बोले
"जग में शिवा चरित्र महान्" ॥

कैसा आदर्श चरित्र है ! शिवा जी, आप धन्य हैं !"

वेद का आदेश है—

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व। (यजु० २३ । १५)

हे मानव ! शक्तिशालिन् ! अपने जीवन का निर्माण करो। अपने चरित्रों को उन्नत बनाओ।

मनुष्य मर जाता है परन्तु उसका चरित्र सुगन्धि फैलाता रहता है। जिस मनुष्य में चरित्र की सुगन्धि होती है वह आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। युवक और वृद्ध उसके निकट बैठकर अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। चरित्रवान् व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर अनेक व्यक्ति सुधर जाते हैं। महात्मा बुद्ध का सम्पर्क पाकर वेश्या का जीवन सुधर गया। महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आकर अनेक दिग्भ्रान्त युवकों का कल्याण हो गया। महाराणा प्रताप के समुज्ज्वल चरित्र से प्रभावित होकर शक्तिसिंह की प्रतिहिंसा की भावना समाप्त हो गई। इतिहास के पन्नों में इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे।

युवको ! क्या आप जानते हैं भारतवर्ष का अर्थ क्या है ? भारतवर्ष को India कहते हैं। यह नामकरण ग्रीस-वासियों द्वारा किया गया। इसका अर्थ है इन्द्र का देश, चन्द्रमा का देश, पवित्रता का देश। पूर्ण भारतीय बनो ! आपकी भाषा में, वेश-भूषा में, चाल-ढाल में, आचार-विचार में, खान-पान में और रहन-सहन में पूर्ण भारतीयता हो। आपकी नस-नस में, रक्त की एक-एक बूंद में भारतीयता हो। भारतीय बनने का तात्पर्य यह है कि आप ईमानदार बनो, पवित्र बनो, क्योंकि भारत का अर्थ है पवित्रता का देश। आज भारत की भारतीयता नष्ट हो रही है। हम पाश्चात्यों का अन्धानुकरण कर रहे हैं। उठो, जागो और अपने चरित्र का निर्माण करो !

हमारे चरित्र के विषय में महर्षि मनु ने हिमालय की चोटी से घोषणा की थी—

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनु० २। २०)

अर्थात् समस्त भूमण्डल के मानव भारत में उत्पन्न ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लें।

परन्तु आज यदि मनु जी हमारे मध्य आ जायें तो वे हमारे चरित्रों का अवलोकन कर चकित रह जायें। आज घूंसखोरी और रिश्वत का बाज़ार गर्म है। जीवन में से सत्य समाप्त हो रहा है। दया नाम की कोई वस्तु हमारे पास नहीं है। दफ्तरों में काम की अपेक्षा गप्पें अधिक लगाई जाती हैं। मार्ग चलती देवियों को कुदृष्टि से देखा जाता है। आचार समाप्त हो रहा है। मद्य, मांस, मछली और अंडों का बाज़ार गर्म हो रहा है। हर वस्तु में मिलावट और बेईमानी है।

भविष्य की आशाओ ! अपना सुधार करो । अपने चरित्र को उज्ज्वल और महान् बनाओ । संसार के सामने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करो कि उसके आलोक में भूले-भटके और पथ-भ्रष्ट मानव अपना मार्ग ढूंढ सकें, आपके जीवन से प्रेरणा लेकर वे आगे बढ़ सकें ।

चरित्र की महिमा का वर्णन करते हुए स्माइल्स ने कितना सुन्दर लिखा है—

"चरित्रहीन धनिक मनुष्य की अपेक्षा निर्धन परन्तु सदाचारी-सच्चरित्र व्यक्ति कहीं अधिक श्रेष्ठ और सम्मान-योग्य है । सीधा-सादा और निर्धन व्यक्ति उस धूर्त से अच्छा है जो बन-ठनकर रहता हो और गाड़ी रखता हो ।"

कविवर माघ का विचार है कि—

"दुर्बल चरित्र का व्यक्ति उस सरकण्डे की भाँति है जो हवा के हर झोंके में झुक जाता है ।"

जिस मनुष्य का चरित्र उज्ज्वल नहीं, उसका जीवन उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार बिना तेल का दीपक । जिस प्रकार जल के बिना कुएं का, प्रकाश के बिना सूर्य का, शीतलता के बिना चन्द्रमा का, सुगन्ध के बिना पुष्प का कोई महत्त्व नहीं, इसी प्रकार चरित्र से रहित मानव भी निकम्मा है, उसका भी कोई मूल्य और महत्त्व नहीं ।

चरित्र के बिना जीवन मृतक के समान है । अतः शुद्ध, पवित्र और सदाचारी बनो । महापुरुषों के जीवनों को पढ़ो और उनके गुणों को जीवन में धारण करते हुए चरित्रवान् बनो ।

□

: १५ :

ब्रह्मचारी बनो !

ब्रह्मचर्य क्या है ? ब्रह्मचर्य दो शब्दों से मिलकर बना है—ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है—ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य आदि। 'चर्य' शब्द चर् धातु से बनता है जिसका अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन, रक्षण आदि। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ—ईश्वर-चिन्तन, वेद-अध्ययन, ज्ञान-उपार्जन और वीर्य-रक्षण। एक-साथ ईश्वर-चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन और वीर्यरक्षण का नाम ब्रह्मचर्य है। यहाँ इन सबके सम्बन्ध में न लिखकर वीर्यरक्षण के सम्बन्ध में ही कुछ कथन करना है।

वीर्य क्या है ? हम जो भोजन करते हैं, पेट में जाकर उसका रस बनता है। उस रस का स्थूल भाग तो मल और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। शेष रस का जठराग्नि में पाक होकर उससे क्रमशः रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और मज्जा से सातवीं धातु वीर्य बनती है। एक-एक धातु के निर्माण में लगभग पाँच दिन लगते हैं। इस प्रकार लगभग ३५ दिन मे यह वीर्य तैयार होता है। लगभग एक मन भोजन से एक तोला वीर्य तैयार होता है। जो व्यक्ति हस्त-मैथुन या अन्य कुचेष्टाओं के द्वारा अपने वीर्य को नष्ट करते हैं, उनकी आयु कम हो जाती है। किसी अनुभवी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

वीर्य का नष्ट करना मृत्यु है और वीर्य की रक्षा करना जीवनदायक है।

वीर्य के महत्त्व का अनुभव करके एक वेदभक्त कामना करता है—

आयुष्यं वर्चस्य७ रायस्पोषमौद्भिदम्।
इद७हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥

(य० ३४। ५०)

आयु को बढ़ानेवाला, कान्तिदायक, शक्ति, पुष्टि और स्फूर्ति देनेवाला, सर्व प्रकार के रोगों का नाश करनेवाला, तेज और ओज प्रदान करनेवाला यह वीर्य मुझमें रहे।

ब्रह्मचर्य की शक्ति महान् है। ब्रह्मचर्य की महिमा का गौरव-गान करते हुए वेद तो यहाँ तक कहता है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमपाघ्नत।

(अ० ११। ५। १९)

ब्रह्मचर्यरूपी तप से विद्वान् मृत्यु को भी मार भगाते हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रह्मचारियों ने मृत्यु के पैर को भी परे धकेला है।

महाभारत के भीषण युद्ध में भीष्म पितामह अर्जुन के तीखे तीरों से घायल होकर शर-शय्या पर पड़े हैं। सारा शरीर छलनी हो रहा है। शरीर पर एक इञ्च स्थान भी ऐसा नहीं था जहाँ तीर न लगा हो। इतना होते हुए भी उन्हें कष्ट तनिक भी नहीं था। उनके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता और मुस्कराहट थी। जब कुछ ऋषियों को भीष्म जी के दक्षिणायन में शरीर-त्याग करने पर आश्चर्य हुआ तो भीष्म जी बोले, "परमहंसो ! मैं मरा नहीं हूँ। अभी मैं जीवित हूँ। सूर्य के उत्तरायण में आने पर ही मैं अपने प्राणों का त्याग करूँगा, ऐसा मेरा दृढ़ विचार

है।" शर-शय्या पर लेटे हुए वे पाण्डवों को उपदेश देते रहे। मृत्यु उनके पास आती थी परन्तु आकर लौट जाती थी। जब सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में आ गया, तभी आपने प्राणत्याग किया। यह है ब्रह्मचर्य का प्रचण्ड प्रताप !

महर्षि दयानन्द को अन्तिम बार हलाहल विष दिया गया। यदि किसी साधारण व्यक्ति को ऐसा विष दिया जाता तो एक अथवा दो मिनट में उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते; परन्तु महर्षि दयानन्द लगभग एक मास तक मृत्यु से लोहा लेते रहे। मृत्यु आती थी और महर्षि उसे ठोकर मारकर परे भगा देते थे। दीपावली के दिन "हे ईश्वर ! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की !" इन शब्दों का उच्चारण करते हुए उन्होंने मृत्यु का हँसकर आलिङ्गन किया। उनकी मृत्यु के दृश्य को देखकर नास्तिक गुरुदत्त विद्यार्थी भी आस्तिक बन गया। यह सब-कुछ ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था।

ब्रह्मचर्य ऐसा साधन है जिसके सिद्ध होने पर कठिन से कठिन कार्यों में भी शीघ्र सफलता प्राप्त हो जाती है। ब्रह्मचर्य के बल से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है। हिन्दी भाषा के किसी कवि ने कहा है—

सागर के ज्यों तरण में नौका है प्रधान।
त्यों भवसागर तरण में ब्रह्मचर्य प्रमाण ॥

जिस प्रकार समुद्र को तरने के लिए जलयान=नौका की आवश्यकता है, इसी प्रकार संसार-रूपी दुःख-सागर को पार करने के लिए ब्रह्मचर्य परमावश्यक है।

ब्रह्मचर्य के साधन—सदा प्रातःकाल उठो। नियमित शौच, स्नान, सन्ध्या, ध्यान और गायत्री-जप, प्राणायाम, सिद्ध और

सर्वाङ्ग आसन, धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय—ब्रह्मचर्य-पालन में ये बहुत सहायक हैं।

स्त्रियों में मत रहो। उनके साथ बहुत अधिक बातें करना, एकान्त में रहना, हँसी-मजाक करना, उनके गुह्य अंगों को देखना आदि अष्ट-मैथुनों से दूर रहो।

जब मार्ग में चलो तब बन्दरों की भाँति लड़कियों को घूर-घूरकर मत देखो। पृथिवी की ओर देखकर गम्भीरतापूर्वक चलो।

गन्दी कथा-कहानियाँ, सिनेमा-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ और उपन्यास मत पढ़ो। ये मस्तिष्क को भड़काते हैं। सिनेमा मत देखो!

सुगन्धित तैल और पाउडर आदि का प्रयोग मत करो! ये भी ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक हैं।

अपने कमरे में महावीर हनुमान्, भीष्म पितामह, भगवान् शङ्कराचार्य और महर्षि दयानन्द के चित्र लगाइये। उनके उपदेश और आचरण पर ध्यान देकर अपने चरित्र का सुधार कीजिये।

"वीर्य का पतन करना एक मानव की हत्या के बराबर है।" आचार्य दादु दयाल के इन शब्दों को सदा स्मरण रक्खो!

ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है, अतः ब्रह्मचारी बनो और संसार में चमको!

□

: १६ :

ईमानदार बनो !

ईमानदारी मनुष्य-रूपी भवन की आधारशिला है। जिस मनुष्य में ईमान नहीं, वह मानवता से गिर जाता है। संसार में जितने प्रकार के धन हैं, उनमें ईमान सबसे बढ़कर है। वेदादि शास्त्रों में इस संसार की उपमा सागर से दी गई है। इस सागर में प्रलोभन-रूपी भयंकर मगर हैं। ईमानदारी-रूपी नौका ही प्रलोभन-रूपी मगरों से रक्षा करती हुई हमें पार ले जा सकती है।

जिस प्रकार मकान के लिए छत की, अन्धे और लंगड़े के लिए लाठी की, कुएँ के लिए जल की, दीपक के लिए तेल की, उपदेशक के लिए श्रोताओं की और लेखक के लिए लेखनी की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार मनुष्य के लिए ईमान की आवश्यकता है।

श्री पोप महोदय का कहना है—

An honest man is God's best creation.

ईमानदार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है।

शेक्सपीयर महोदय का कथन है–

No legacy is so rich as honesty.

कोई उत्तरदान ईमानदारी के सदृश बहुमूल्य नहीं है।

अपने व्यवहार में ईमानदार बनो। प्रलोभनों में मत फँसो। कहीं कोई वस्तु पड़ी मिल जाय तो उसे अपने पास मत रक्खो।

उसे उसके स्वामी के पास पहुँचाने का प्रयत्न करो। इस विषय में एक सत्य और प्रेरणादायक घटना का उल्लेख यहाँ करता हूँ—

सायंकाल का समय था। सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था। झालरापाटन में एक जगमोहन प्रसाद माथुर अपने साथियों के साथ खेलता हुआ सड़क के किनारे-किनारे आ रहा था। उसके आगे अभी कुछ देर पूर्व उज्जैन की एक बारात बाजों-गाजों के साथ श्री लालचन्द जी मोमियाँ के यहाँ जा रही थी। सड़क पर चलते हुए बालक जगमोहन की दृष्टि एक जड़ाऊ हार पर पड़ी। उसने हार उठा लिया। उसने अनुमान किया, अभी हमारे आगे-आगे बारात गई है, यह हार उन्हीं का होगा। यह सोचकर बालक जगमोहन हार को उसके स्वामी के पास पहुँचाने के लिए चला। साथियों ने मना किया। कई प्रकार के प्रलोभन दिये परन्तु उसने लालचन्द जी की दुकान पर जाकर हार उन्हें सौंप दिया।

उधर बारात की धूमधाम में हार गिरने की बात किसी के ध्यान में भी नहीं थी। और तो और, वर महोदय जिनके गले से वह हार गिरा था, उसे भी हार के गिरने का ज्ञान नहीं था। जब बालक ने हार ले जाकर दिया, तब वर महोदय को ध्यान आया। सारे बाराती बालक की ईमानदारी देखकर अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर बालक को केवल एक रुपया पारितोषिक के रूप में दिया। बालक पुरस्कार पाकर प्रसन्न होता हुआ घर आया और इनाम का रुपया घरवालों को देकर सारी कथा कह सुनाई। घर के सभी लोगों ने पुरस्कार में प्राप्त रुपये को स्वीकार कर बालक को साधुवाद और आशीर्वाद दिया और साथ ही उपदेश भी दिया—"सदा ऐसी ही ईमान-

दारी और सचाई से रहना। पराये धन को धूल के समान समझना।"

इस घटना से शिक्षा लेकर प्रत्येक बालक ईमानदार बन सकता है। आज ही से निश्चय कीजिए कि हम भविष्य में जो भी कार्य करेंगे, वह पूर्ण ईमानदारी के साथ करेंगे। यदि आप दूकानदार बनें तो पूरा तोलें, जिस वस्तु का सौदा करें वही दें। ऐसा न हो कि नमूना कुछ हो और माल कुछ हो। उदाहरण के रूप में अमेरिकावालों को भारत की 'छींट' बहुत पसन्द आई। उन्होंने छींट के लिए ऑर्डर दे दिया। यहाँ से घटिया-से-घटिया छींट भेजी गई। ऐसी बेईमानी न करने का व्रत लो।

यदि आप वकील बनें तो सच्चे मुकद्दमे ही हाथ में लें। स्वामी श्रद्धानन्द जी के आदर्श को अपने सामने रक्खो। एक बार उनके मुंशी ने एक झूठा केस ले लिया। मुंशीराम जी (स्वामी जी का पूर्व नाम) को पता लगा तो कचहरी में ही मुकद्दमे की पैरवी करने से मना कर दिया।

बैरिस्टर चित्तरंजन दास जी भी बहुत ही ईमानदार थे। इनके पिताजी ऋणग्रस्त होकर दिवालिया हो गये थे। कानून के अनुसार इस ऋण का श्री चित्तरंजन दास जी पर कोई दायित्व नहीं था। परन्तु वृद्ध पिता के इस ऋणभार को उन्होंने अपने ऊपर ले लिया और रुपये हाथ में आने पर वर्षों बाद उन्होंने पितृ-ऋण के लगभग ६८ सहस्र रुपये चुकाये। ईमानदारी का कैसा उत्तम आदर्श है!

यदि आप डॉक्टर बनें तो रोगियों को लूटने का प्रयत्न मत कीजिये। उचित दवा और परामर्श दीजिये। यदि रोगी मर रहा है तो फ़ीस मत लीजिये। यदि आप अध्यापक बनने का विचार रखते हैं तो देश के निर्माण में सहयोग दीजिये। भावी

सन्तति को श्रेष्ठ, सभ्य, बलवान् और चरित्रवान् बनाइये। अपनी कक्षा में ठीक से पढ़ाइये। विद्यार्थियों को ट्यूशन रखने पर विवश मत कीजिये। यदि आप क्लर्क बनते हैं तो टाँग के ऊपर टाँग रखकर गप्पें मत लगाइये। अपने कार्य को परिश्रम से कीजिये।

ईमानदारी के साथ परिश्रमपूर्वक कमाये हुए धन में जो आनन्द आता है, बेईमानी, धोखे, छल और कपट से कमाये धन में वह आनन्द कहाँ है ? इसमें सन्देह नहीं कि अनुचित साधनों द्वारा धन प्राप्त करके मनुष्य का मन-मयूर नाच उठता है; वह अपनी सफलता पर फूला नहीं समाता, परन्तु अन्त में उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है। बेईमान व्यक्ति के इहलोक और परलोक दोनों खराब हो जाते हैं। उसका आदर और सम्मान समाप्त हो जाता है तथा लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं।

किसी विद्वान् ने क्या सुन्दर बात लिखी है—

Just as health is to the body, the same is honesty to the soul.

जिस प्रकार शरीर के लिए स्वास्थ्य की आवश्यकता है, उसी प्रकार आत्मा के लिए ईमानदारी की।

ईमानदार बनो ! देखो, ईमानदार नौकर खज़ाने की चाबी प्राप्त करता है जबकि बेईमान पुत्र को उसे छूने की भी आज्ञा नहीं होती।

❑

: १७ :

जितेन्द्रिय बनो !

जितेन्द्रियता क्या है ? महर्षि मनु जी कहते हैं—

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥

(मनु २ । ९८)

सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर और सूंघकर जिस व्यक्ति को न प्रसन्नता होती है और न ग्लानि, वह व्यक्ति जितेन्द्रिय है ।

संसार के समस्त पदार्थ आत्मा के लिए हैं । वेद संसार के पदार्थों का उपभोग करने का आदेश देता है । आप देखो और सुनो, परन्तु किस प्रकार—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

(य० २५ । २१)

"हम कानों से कल्याणकारी और हितकर वचनों को सुनें तथा आँखों से सुख प्रदान करनेवाले भले दृश्यों को देखें ।"

आपकी भावनायें किस प्रकार की होनी चाहियें ? आप खाओ । रसगुल्ला भी खाओ, बर्फ़ी और कलाकन्द भी उड़ाओ परन्तु इनके दास मत बनो, इनके पीछे मरो मत । रईस बनो, सईस मत बनो । जिह्वा को अपने वश में रक्खो, आप जिह्वा के वशीभूत मत हो जाओ । सुन्दर वस्तु को देखकर उसके पीछे भागने मत लग जाओ । अपने कानों को राग-रंग और अश्लील गानों के पीछे मत जाने दो ।

यदि आप बलवान् बनना चाहते हैं तो इन्द्रियों को अपने वश में कीजिये। "मैं इन्द्र हूँ और ये इन्द्रियाँ मेरी शक्तियाँ हैं"— इस भावना को अपने जीवन में लाइये। विनोबा जी विद्यार्थियों को शिक्षा देते हुए कहते हैं—

"विद्यार्थी-अवस्था में ही संयम की महान् विद्या सीख लेनी चाहिये। जब आप संयम की शक्ति का संग्रह कर लेंगे, तब एकाग्रता भी, जो जीवन की महान् शक्ति है पा लेंगे।"

इन्द्रिय-निग्रह से शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के साथ-साथ मानसिक पवित्रता की भी प्राप्ति होती है। इन्द्रिय-दमन का अभ्यास जीवन को शान्त, सहनशील और महान् बना देता है।

नैपोलियन महोदय अभी विद्यार्थी थे। अपने अध्ययन-काल में उन्हें कुछ समय के लिए अक्लोनी नामक गाँव में एक नाई के यहाँ रहना पड़ा। नैपोलियन एक सुन्दर और सुकुमार नौजवान थे। उनके सौन्दर्य को निहारकर नाई की पत्नी उनपर मुग्ध हो गई और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी। परन्तु नैपोलियन को तो अपनी पुस्तकों से ही अवकाश नहीं था। वह जब भी देखती, उन्हें अपने अध्ययन में तल्लीन पाती।

अध्ययन समाप्त हुआ। नैपोलियन फ्रांस के प्रधान सेनापति चुने गये। सेनापति बनने के पश्चात् वे एक बार पुनः उस स्थान पर गये। नाई की पत्नी दुकान पर बैठी थी। नैपोलियन ने पूछा, "तुम्हारे यहाँ नैपोलियन नाम का युवक रहता था, तुम्हें कुछ स्मरण है उसका ?" स्त्री झल्लाकर बोली, "रहने दीजिये ! ऐसे नीरस व्यक्ति की तो मैं चर्चा भी नहीं करना चाहती। वह तो पुस्तकों का कीड़ा था कीड़ा। न उसे किसी से दिल खोलकर

बात करना आता था और न हँसना ही।" नैपोलियन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"ठीक कहती हो देवी ! यदि नैपोलियन तुम्हारी रसिकता में उलझ गया होता तो आज फ्रांस का सेनापति बनकर तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकता था।" सचमुच जितेन्द्रियता मानव को महान् बना देती है।

युवको ! मन और इन्द्रियों का निग्रह करो। आध्यात्मिक विजेता बनो। कामवासनाओं और दूषित विचारों को कुचल दो। गन्दे और खोटे विचारों को अपने निकट मत आने दो।

कामवासनाओं को रोककर धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करना कठिन कार्य है परन्तु धैर्य, प्रयत्न, पुरुषार्थ, श्रेष्ठ पुरुषों का संग, दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास से सब कठिनाइयाँ दूर होकर मार्ग सरल और विघ्नरहित हो जाता है। पुरुषार्थ करो, साहसी बनो। अन्त में तुम विजयी बनोगे।

संयमहीन पुरुष हो अथवा स्त्री, युवक हो या युवती—सभी का जीवन व्यर्थ और निकम्मा है। इन्द्रियों को निरंकुश छोड़ देनेवाले व्यक्ति का जीवन बिना पतवार की नौका के समान है जो पहली ही चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो जाती है।

जैसे कछुआ अपने सब अंगों को भीतर खेंच लेता है, इसी प्रकार आप भी अपनी इन्द्रियों को सभी विषयों से खींचकर जितेन्द्रिय बनो। सभी बातों में संयमी बनो। आपकी वाणी में संयम हो। कम बोलो। जो बोलो, मधुर और मीठा बोलो। भोजन में भी संयमी बनो। पेटू मत बनो। कम खाओ। परन्तु कम खाने का यह अर्थ कदापि नहीं कि भूखे ही रह जाओ। शीलवान् बनो। **'शीलं परं भूषणम्'**—शील मनुष्य का सबसे उत्तम आभूषण है।

स्त्री-जाति का आदर और सम्मान करो। सड़क पर जाती युवतियों को देखकर तालियाँ और सीटियाँ न बजाओ। अश्लील चेष्टाएँ न करो। अपने से बड़ी स्त्रियों को माता के समान, बराबर वालियों को बहन के समान और छोटियों को पुत्री के समान समझो। उन्हें उसी दृष्टि से देखो।

जितेन्द्रिय बनने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक क्षण काम में लगे रहो। जब आप पढ़ने बैठो तो संसार के सारे विचारों को एक ओर रखकर पुस्तकों में ही खो जाओ। पुस्तकों के अतिरिक्त और कोई विचार आपके मस्तिष्क में आये ही नहीं।

अन्त में एक संस्कृत कवि के स्वर-में-स्वर मिलाकर इतना ही कहना है—

सम्पदां कथितः पन्था इन्द्रियाणां हि संयमः।
विपरीतस्तु विपदां येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

इन्द्रियों का संयम सम्पत्तियों का मार्ग है। इसके विपरीत असंयम विपत्तियों का मार्ग है। जिसे चाहो चुन लो।

□

: १८ :

तपस्वी बनो !

संसार के सभी महापुरुषों ने, चाहे वे किसी भी मत और सम्प्रदाय के हों, तप की आवश्यकता पर बल दिया है। लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उन्नति के लिए तप की महती आवश्यकता है। जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिए भी तप की आवश्यकता होती है।

प्रश्न होता है तप है क्या ? आज तप के नाम पर ढोंग और पाखण्ड हो रहा है। आज आपको ऐसे अनेक तपस्वी मिल जायेंगे जो वैशाख और ज्येष्ठ की भयकंर गर्मी में तपते हैं। ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो भीषण सर्दी में कौपीन बाँधकर बैठ जाते हैं। एक पैर पर खड़े होनेवाले, एक हाथ को ऊपर खड़ा करके तप करनेवाले, वृक्षों से उल्टे लटककर तप करनेवाले, और काँटों पर लेटनेवाले तपस्वी भी बहुत मिल सकते हैं, परन्तु वास्तव में इनमें तपस्वी एक भी नहीं। इनमें कोई धन चाहता है, कोई मान और सम्मान का भूखा है, कोई किसी युवती का ही अपहरण करना चाहता है और कोई किसी का अनिष्ट करना चाहता है। ऐसे झूठे और दम्भी तपस्वियों के सम्बन्ध में किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

कोई सफ़ा न देखा दिल का, साँचा बना झिलमिल का।
कोई बिल्ली कोई बगुला देखा, पहरे फ़कीरी खिलका॥

यह तप नहीं है। तब तप क्या है? तप का अर्थ है कष्ट सहना, तप का अर्थ है भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, हानि-लाभ, हर्ष-शोक और मान तथा अपमान को समभाव से सहन करना। तप का अर्थ है शरीर, प्राण, इन्द्रिय और मन की साधना। तप का एक अर्थ तपाना भी होता है।

तप का फल है कान्ति, निर्मलता, स्वच्छता। यदि तप करने के पश्चात् जीवन में शुद्धता, स्वच्छता, निर्मलता और कान्ति नहीं आती तो वह तप, तप नहीं है। जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि में तपकर दिव्य कुन्दन बन जाता है, ठीक इसी प्रकार वास्तविक तप से साधक का शरीर, प्राण, इन्द्रिय और मन शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो जाते हैं। उनके मल नष्ट हो जाते हैं, अशुद्धियों का क्षय हो जाता है और कमियाँ दूर हो जाती हैं।

योगेश्वर श्री कृष्ण ने तीन प्रकार के तप बतलाये हैं—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १४)

ईश्वर, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों का आदर-सत्कार, आन्तरिक और बाह्य शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य-पालन और किसी भी प्राणी को कष्ट न देना शारीरिक तप है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

दूसरों के हृदयों को दुखाने और चुभनेवाली बात न बोलना, सत्य बोलना, मीठा एवं मधुर बोलना, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा "मैं कौन हूँ" इस तत्त्व का चिन्तन करना यह वाणी का तप है।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।

(गीता १७ । १६)

मन से सदा प्रसन्न रहना, शान्त एवं मौन रहना, मन को अपने वश में रखना और अन्तःकरण को शुद्ध और पवित्र रखना यह मानस तप है ।

तप की महिमा महान् है । तप के बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती । अपने तन, मन और सर्वस्व को गुरु विरजानन्द जी के चरणों में न्यौछावर करके महर्षि दयानन्द कार्यक्षेत्र में कूदे । हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर पाखण्ड-खण्डिनी पताका लगाकर उन्होंने वैदिक धर्म का नाद बजाया । परन्तु मेले की समाप्ति पर स्वामी जी ने अनुभव किया कि जैसा फल मिलना चाहिये था वह नहीं मिला। विचारकर स्वामी जी ने निश्चय किया कि अभी तप की कमी है। अतः उसी समय उन्होंने अपनी सभी वस्तुएँ दान कर दीं और चल दिये तप करने के लिए, कठोर साधना के लिए । अपने जीवन को एक बार पुनः तप की भट्टी में तपाकर जब वे कार्यक्षेत्र में आये तब उन्हें आशातीत सफलता मिली ।

हजरत मुहम्मद साहब के जीवन में भी एक शिक्षाप्रद घटना का उल्लेख है । मुहम्मद साहब धरती पर मोटी चटाई बिछाकर सोया करते थे । एक बार एक भक्त ने उनकी पीठ पर चटाई के चिह्न देखे । वह तड़प उठा, बोला—"मुझे आज्ञा देते तो मैं आपके लिए कोमल शय्या ला देता ।" मुहम्मद साहब ने कहा, "मैंने कुछ करने के लिए जन्म लिया है। कोमल शय्या पर विश्राम करने की आवश्यकता मेरे शरीर के लिए नहीं है । घोर तप के बिना ईश्वरीय कार्य को कौन कर सकता है ?" सचमुच

मनुष्य अपने ध्येय को श्रम और तपस्या से ही प्राप्त कर सकता है।

तप त्याग की पहली सीढ़ी है। तप से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति बढ़ती है। तप के द्वारा शक्ति का संचय होता है और शक्ति से मनुष्य जो करना चाहे कर सकता है।

युवको ! तप करने से घबराओ मत। महात्मा टॉलस्टॉय ने कितना सुन्दर कहा है—

An hour to suffer, life-time to enjoy

थोड़ी देर कष्ट-सहन करने के पश्चात् जीवन-भर आनन्द-ही-आनन्द है। उर्दू भाषा के एक कवि ने भी क्या खूब कहा है—

याद रख इस गुर को तू आठों पहर चौंसठ घड़ी।
ख़ार चुभता है जिसे बस फूल पाता है वही ॥

सत्य, धर्म और न्याय के मार्ग पर चलते हुए जो कष्ट और आपत्तियाँ आयें, उन्हें ईश्वर का वरदान समझो। कछुए की भाँति अपनी पीठ को दृढ़ ढाल के समान बनाकर संसार के आघातों को सहो, परन्तु अपने मार्ग से विचलित मत होओ।

यदि आप आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्नति करना चाहते हैं, जीवन में कुछ करके और बनके दिखाना चाहते हैं तो तप करो। जो व्यक्ति तप करता है वह उन्नत होता है, उसे प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है। जो तप नहीं करता, उसका पत—पतन हो जाता है।

□

: १९ :

जीवन व्यर्थ न खो !

जगद्‌गुरु शंकराचार्य लिखते हैं—

"संसार में मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होने की इच्छा) और महापुरुषों का सङ्ग—ये तीनों ही दुर्लभ हैं।"

जितनी भी योनियाँ हैं मानव-योनि उन सबमें श्रेष्ठ है। वेद में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। वेद में कहीं इसे दिव्य रथ से उपमा दी गई है तो कहीं इसे कभी भी परास्त न होनेवाली अयोध्या बताया गया है। एक स्थान पर इसकी उपमा नौका से भी दी गई है। इस नौका में बैठकर मनुष्य संसार-सागर को तैरने में समर्थ हो जाता है।

कवियों और लेखकों ने भी मानव-शरीर की प्रभूत प्रशंसा की है। हमारे शरीर में नौ द्वार हैं, अतः कबीर ने इसे नवद्वारे का पिंजरा कहा है। मानव-देह में ही ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं, अतः इसे नारायण की नगरी भी कहते हैं। सुना जाता है कि एक पारस-पत्थर होता है जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है, परन्तु आज तक किसी ने उसे देखा नहीं। हमारा यह शरीर ही पारस-मणि है जिसके द्वारा हम स्वर्ग से भी अधिक मूल्यवान्, ज्ञान, विज्ञान और मोक्ष को भी प्राप्त कर सकते हैं।

यह सुन्दर शरीर हमें व्यर्थ करने के लिए नहीं मिला। वेद के शब्दों में—

इयं ते यज्ञिया तनूः। (य० ४। १३)

हे मानव ! तुझे यह शरीर ईश्वर-प्राप्ति के लिए मिला है। अन्य ग्रन्थों में भी ऐसी ही भावनाएँ व्यक्त की गई हैं—

मानवस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
स तु कृच्छ्राय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च ।।

मनुष्य का यह शरीर विलासिता में फँसे रहने और केवल धन ही बटोरते रहने जैसे छोटे कार्यों के लिए नहीं मिला, अपितु जीते जी सत्य, अहिंसा आदि कठिन-से-कठिन तपों का अनुष्ठान करने के लिए और मरने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए मिला है ।

प्रसिद्ध आंगल कवि टेनिसन के शब्दों में मानव-जीवन का उद्देश्य है—

To strive, to seak, to find and not to yield.

पुरुषार्थ और प्रयत्न करते हुए अधिक-से-अधिक ज्ञान का उपार्जन और प्रभु की प्राप्ति ।

अपने शरीर के गौरव और महत्त्व को समझकर इसका सदुपयोग करो । सावधान ! आलस्य और प्रमाद में आपका जीवन व्यर्थ न चला जाय । यदि यह जीवन ईश्वर की प्राप्ति के बिना ही चला गया तो बड़ी हानि हो जायेगी । उपनिषद् के ऋषि ने कहा है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।। (केनोप० २ । ५)

यहाँ, इसी शरीर में, इसी जीवन में ब्रह्म को जान लिया, ईश्वर के दर्शन कर लिये तो जीवन सफल है । यदि इस जन्म में ईश्वर को न जाना तो जीवन निष्फल है, व्यर्थ है ।

कार्य बहुत महान् है और आयु थोड़ी-सी । इसे व्यर्थ न जाने दीजिये । आज से ही अपने जीवन को सफल बनाने का

उद्योग आरम्भ कर दीजिये। कुछ युवक अपने जीवन का एक ध्येय बना लेते हैं। वे कहते हैं अभी जल्दी क्या है—

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों।
जल्दी तुझको क्या पड़ी, अभी जीना है बरसों॥

ऐसे युवक अपने जीवन का कल्याण नहीं कर सकते। "अभी जल्दी क्या है?" यह सोचते-सोचते उनका जीवन ही समाप्त हो जाता है। यदि वस्तुतः आप कुछ करना चाहते हैं तो आपकी यह भावना होनी चाहिये—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होयगी, फेर करेगा कब॥

आज से ही अपने कल्याण की साधना में लग जाइये। आज से नहीं, अभी से, इसी क्षण से। जो व्यक्ति आज-कल करते रहते हैं उनके जीवन का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

कुछ युवक सोचते हैं जल्दी क्या है, बुढ़ापे में कर लेंगे। यह बुढ़ापे की बात तो मूर्खता की बात है। आप कहेंगे कैसे? लीजिये सुनिये—

एक व्यक्ति आम लाया। घर के सारे व्यक्ति आम खाने के लिए बैठे। वे लोग आम चूस-चूसकर उनकी गुठलियों और छिलकों को थालियों में इकट्ठा करते जाते थे। जब आम चूस चुके तो उन गुठलियों और छिलकों के ऊपर चाँदी के वर्क भी चिपका दिये। किसी ने पूछा, "आपने ये छिलके और गुठलियाँ क्यों रख छोड़ी हैं?" गृहस्वामी ने कहा—"ये अतिथियों को खिलाने के लिए हैं।" आप कहेंगे सचमुच वह व्यक्ति बड़ा मूर्ख था। ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति जवानी के समय में कुछ न करके बुढ़ापे में, जब उसकी देखने, सुनने, चलने और फिरने की शक्ति क्षीण हो जाती है, महान् बनने और ईश्वर-भक्ति करने

की बात सोचता है वह भी मूर्ख है। उठती हुई जवानी में ही कुछ करो कुछ बनो। कविवर हाली ने कहा है—

खेतों को दे लो पानी, अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो, उठती जवानियाँ हैं॥

बहुत-से युवक भाग्य को कोसकर अपना जीवन व्यर्थ गँवाते रहते हैं। भाग्य कोई वस्तु नहीं है। जयशंकर प्रसाद जी ने लिखा है—

"सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के भय हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ स्वयं सौभाग्य को खींच लाता है।"

अब तक जो हुआ सो हुआ। Grieve it not. It is never too late to mend. जो हो गया उसकी चिन्ता छोड़कर भविष्य-जीवन का निर्माण करो। अपने समय के एक-एक क्षण का सदुपयोग करो।

प्रतिवर्ष अपने जीवन का चिट्ठा बनाओ और देखो कि आपकी Balance sheet क्या है? आपने इस वर्ष में कितनी उन्नति या अवनति की है अथवा आप अपने स्थान पर ही अविचल हैं? आपने अपने जीवन में कौन-कौन-सी बुराइयों को दूर कर कौन-कौन-से सद्गुणों को धारण किया है? फिर अगले वर्ष के लिए प्रोग्राम बनाओ। सदा ध्यान रक्खो—

जिन्दगी है एक तीर, जाने न पाय रायगाँ[1]।
पहले निशाना देख लो, बाद में खेंचो कमाँ॥

पवित्र आत्माओ! उठो जागो! सत्य, पवित्रता, प्रेम और सदाचारमय दिव्य-जीवन व्यतीत करो।

□

---

१. व्यर्थ।

: २० :

स्वाभिमानी बनो !

अभिमान पतन का मूल है। महाभारत में इसे नरक का द्वार कहा गया है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

'जिसने गर्व किया, उसका अवश्य पतन हुआ।'

अभिमान के दोषों को दर्शाते हुए महात्मा विदुर जी ने ठीक ही लिखा है—

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा, ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥

(विदुरनीति ३५ । ५०)

बुढ़ापा सुन्दर रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, दूसरे के दोष देखने की प्रवृत्ति धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी और शोभा को, दुष्टों की संगति और नीचों की सेवा शील को, काम (विषयाभिलाषा) का वेग लज्जा को और अभिमान सबको हर लेता है, नष्ट कर देता है।

युवको ! यदि आप उन्नति करना चाहते हैं, ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, मान और सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं, यश और कीर्ति प्राप्त करना चाहते हैं, तो अभिमान को अपने पास मत फटकने दो। यंग महोदय लिखते हैं—

We rise in glory as we sink in pride.

ज्यों-ज्यों अभिमान कम होता है, कीर्ति बढ़ती है।

अपने-आप को ही सब-कुछ मत समझो। संसार के महापुरुषों के जीवनों का अवलोकन करते हुए निरहंकारी, विनीत और सुशील बनो। शेफोक्लीज़ ने बड़ा सुन्दर लिखा है—

If any man thinks that he alone is wise, that in speech or in mind he hath no peer—such a soul when laid open is ever found empty.

एक व्यक्ति जो यह समझता है कि वह अकेला ही बुद्धिमान् है, व्याख्यान देने अथवा बुद्धि में उससे बढ़-चढ़कर कोई नहीं है, ऐसे व्यक्ति का जब वास्तविक रूप सामने आता है तो वह पूर्णरूपेण खोखला होता है।

आप अभिमानी मत बनो परन्तु अपने देश और जाति के लिए, संस्कृति और सभ्यता के लिए तो आपमें अभिमान कूट-कूटकर भरा होना चाहिए। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

जिस को न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है॥

आपके जीवन में स्वदेशाभिमान की तरंगें उठनी चाहियें। महर्षि दयानन्द के जीवन का पाठ करके देखिये, कैसी देश-भक्ति थी उनमें। दिन और रात उन्हें देश के उद्धार और सुधार की ही चिन्ता थी। उन्हें अपने देश की प्रत्येक वस्तु से प्रेम था।

मिस मेयो भारत आई। भारत का भ्रमण करने के पश्चात् उसने एक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक ऊटपटाँग बातें लिखी गई थीं। जब कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर से किसी ने उस पुस्तक के सम्बन्ध में उनकी सम्मति पूछी तब उन्होंने कहा—'मुझे तो ऐसा

प्रतीत होता है किसी ने चाँद पर थूकने का प्रयत्न किया है।" यह है स्वदेशाभिमान !

युवको ! दब्बू, कायर, भीरु और डरपोक न बनो। मुन्शी प्रेमचन्द जी के जीवन को देखिये, उनमें स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा हुआ था।

प्रेमचन्द जी एक स्कूल में अध्यापक थे। एक बार इन्सपैक्टर महोदय स्कूल के निरीक्षण के लिए आये। मुन्शी जी ने स्कूल का निरीक्षण कराया। सायंकाल वे अपने मकान के बाहर बैठे कुछ लिख रहे थे। सहसा इन्सपैक्टर महोदय उधर से ही निकले। दोनों की दृष्टि मिली। उन्होंने एक-दूसरे को देखा। इन्सपैक्टर महोदय का विचार था कि अधिकारी होने के नाते मुन्शी प्रेमचन्द उठकर आयेंगे और उनका स्वागत करेंगे। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इन्सपैक्टर की आशाओं पर पानी फिर गया। अपनी इन्सपैक्टरी के गर्व में दूसरे दिन उन्होंने मुन्शी प्रेमचन्द जी को बुलवाया और अपना रोब डालना चाहा। प्रेमचन्द जी ने नम्रतापूर्वक कहा, "महोदय ! स्कूल के समय में ही मैं नौकर हूँ, उसके पश्चात् मैं अपने घर का सम्राट् हूँ। यह आवश्यक नहीं कि मैं लोगों का अभिवादन करता फिरूँ और विशेषकर उस समय जब मैं सरस्वती देवी की आराधना कर रहा होऊं।" इन्सपैक्टर महोदय निरुत्तर होकर मुँह ताकने लगे। यह है स्वाभिमान का जीता-जागता उदाहरण !

श्री पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी भी ऐसे ही स्वाभिमानी थे। एक बार यात्रा करने के लिए वे रेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चढ़े। सभी सीटों पर लोग बैठे हुए थे। एक सीट पर दो अंग्रेज़ बैठे थे और उनके बीच में स्थान खाली पड़ा था। और कहीं स्थान न देखकर विद्यासागर जी दोनों के बीच में

जाकर बैठ गये। उन्हें इस प्राकर अपने मध्य में बैठते देखकर एक अंग्रेज़ ने कहा—'उल्लू।' दूसरा बोला—'गधा।' विद्यासागर जी ने मुस्कराते हुए कहा—"मैं दोनों के बीच में हूँ।"

गंग कवि ने यह प्रतिज्ञा की हुई थी कि मैं अपनी लेखनी से भोग-विलास में लीन शासकों की प्रशंसा नहीं करूँगा। एक बार इन्हें महाराज अकबर के सम्बन्ध में एक कविता लिखने का आदेश मिला। उसका पालन न करने पर उन्हें मदमस्त हाथी द्वारा रौंदे जाने की आज्ञा हुई। जब मदमस्त हाथी इनकी ओर चला तब वे तनिक भी दुःखित नहीं हुए। उन्होंने कहा—

सब देवन को दरबार जुरो तहँ पिंगल छन्द बनायके गायो।
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो॥
मृत्युलोक में है नर एक गुणी, कवि गंग को नाम सभा में सुनायो।
सुन चाह भई परमेश्वर को और गंग को लेन गनेश पठायो॥

कैसा स्वाभिमान है! किसी ने कितना सुन्दर कहा है—

"स्वाभिमान एक सात्त्विक सुगन्धित कमल पुष्प है जिसके चारों ओर सद्‌गुणों के भ्रमर सदैव गुंजित रहते हैं।"

देश की विभूतियो! स्वाभिमान के महत्त्व को समझो। अभिमान को छोड़कर स्वाभिमानी बनो।

□

: २१ :

शिष्ट बनो !

महान् दार्शनिक महर्षि दयानन्द ने शिष्ट और शिष्टाचार की परिभाषा इस प्रकार की है—

"शिष्टाचार जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्यासत्य निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना है, यही शिष्टाचार है और जो इसको करता है वह शिष्ट कहलाता है।" (स्वमन्तव्यामन्तव्य)

बोधायन धर्मसूत्र में शिष्ट का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

"शिष्टाः खलु विगतमत्सराः, निरहंकाराः, कुम्भीधान्या अलोलुपाः, दम्भ-दर्प-लोभ-मोह-क्रोध-विवर्जिताः।"(बो० १।५)

अर्थात् शिष्ट उन्हें कहते हैं जिनमें ईर्ष्या, अभिमान, धन-संग्रह की इच्छा, लालच, दम्भ, दर्प, लोभ, मोह और क्रोध नहीं होता।

शिष्टाचार से मनुष्य के गुणों, शिक्षा, रुचि और सभ्यता का पता लगता है। शिष्टाचार एक महान् निधि है। इसके द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ! अमेरिका जैसे विशाल देश में स्वामी रामतीर्थ का सहायक कौन था ! उनकी मस्तीभरी मुस्कान और मानव-मात्र के प्रति प्रेम के आचरण ही ने तो उनके लिए अनेक मित्र और प्रेमी तैयार कर दिये थे।

शिष्टाचार से समाज में आदर प्राप्त होता है, सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है, उच्च पद प्राप्त होता है और जीवन की

अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। शिष्टाचार वह दीपक है जो हमारे जीवन को ज्योतिर्मय बनाता है। यह हमें पशु-जीवन से मानव-जीवन की ओर ले जाता है। शिष्ट व्यक्ति समाज का आभूषण है, उसका स्वागत सर्वत्र होता है।

शिष्टाचार में भारत की गणना सर्वोपरि रही है। हमारे वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण और महाभारत आदि ग्रन्थों का प्रत्येक पृष्ठ हमारे आचार का पता दे रहा है। मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम और श्री भरत जी दोनों ने राज्य को ठोकर लगा दी। श्री लक्ष्मण जी १४ वर्ष तक वन में रहे परन्तु कभी सीता जी के मुख की ओर आँख नहीं उठाई। एकलव्य ने गुरुदक्षिणा में अपना अंगूठा कटवा दिया। शिवि ने एक कबूतर की रक्षा के लिए अपना मांस दे दिया। दधीचि ने राष्ट्र-रक्षा के लिए अपनी हड्डियाँ प्रदान कर दीं। श्री कृष्ण नंगे पैर दीन-हीन सुदामा का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़े। संसार के इतिहास में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलेंगे। वर्तमान युग में भी महर्षि दयानन्द जैसे अनुपम शिष्टाचारी का उदाहरण कहाँ मिलेगा? स्वामी जी ने एक पंच-वर्षीय नग्न बालिका को देखकर उसके आगे शीश झुका दिया था। कितना उच्च शिष्टाचार है!

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने हमारे आचार पर भी कुठाराघात किया। आज स्वतन्त्रता—उच्छृङ्खलता के नाम पर शिष्टाचार भी समाप्त हो रहा है। आज माता-पिता को प्रणाम करने में हमें शर्म आती है। बड़ों को नमस्ते कहने में हम अपना अपमान समझते हैं। अध्यापकों की नकल निकालने और उनकी हँसी उड़ाने में गौरव का अनुभव करते हैं। युवको ठहरो! पीछे की ओर लौटो। स्मरण रक्खो हमारा आदर्श क्या है। हमारा आदर्श है—

आर्य सभ्यता का रहा सदा यही परिणाम।
जीवन में बस ज्योति हो और मरने में निर्वाण ॥

यहाँ शिष्टाचार के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र दिये जा रहे हैं। इन्हें अपने जीवन में धारण कीजिये और शिष्ट बनिये—

अपने से बड़ों के आने पर उन्हें देखते ही खड़े हो जाइये और उनका अभिवादन कीजिये।

अतिथि और सम्माननीय व्यक्तियों के आने पर उन्हें समुचित स्थान देकर आसन पर बिठाना चाहिए। गुरुजन खड़े हों तो स्वयं बैठे या लेटे रहना शिष्टाचार के विपरीत है।

वार्तालाप भी शिष्टाचार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वार्तालाप के सम्बन्ध में तीन बातें बहुत महत्त्व की हैं। मित = थोड़ा बोलिये, हितकर बोलिये और शिष्ट बोलिये। अन्धे को अन्धा न कहकर सूरदास और काणे को काणा न कहकर समदर्शी कहना शिष्टता है।

सबके साथ सत्य और शुद्ध व्यवहार करना। किसी भी कारण से, किसी के भी साथ छल, कपट और बेईमानी का व्यवहार न करना।

अन्धे, बहरे, लूले, लंगड़े लोगों को देखकर उनका उपहास न करना।

गाली-गलौच और गन्दी एवं असभ्य भाषा का प्रयोग न करना।

नाखुनों को दाँतों से न काटना। इससे टी० बी० होकर शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

पुस्तक और भोजन-द्रव्यों को न पैर से छूना और न लाँघना।

नारी-जाति का सम्मान करो। भोजन करती हुई, वस्त्र पहनती हुई, काजल और बिन्दी लगाती हुई तथा नग्न स्त्रियों को मत देखो।

नग्न होकर न सोओ और न भोजन ही करो।

किसी के वैभव को देखकर ईर्ष्या मत करो।

किसी को जो वचन दे दो उसका पालन करो।

पाखण्डी, कुकर्मी, शठ और धूर्तों का वाणी से भी सत्कार मत करो।

मार्ग में चलते हुए न खाओ।

मार्ग में चाहे जहाँ थूकना, कूड़े और कागज़-पत्रों को सड़क पर फेंकना और अपने घर को ठीक प्रकार से सजाकर न रखना—ये सब शिष्टाचार के विपरीत हैं।

यहाँ दिग्दर्शन के रूप में कुछ नियम दिये हैं। इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों सूत्र हैं जिन्हें शिष्टों के अनुकरण से सीखा जा सकता है। शिष्टों का अनुकरण ही शिष्टाचार सीखने का सर्वोत्तम साधन है। यदि बुद्धिमानी से कार्य लिया जाय तो मूर्खों से भी शिष्टाचार सीखा जा सकता है। किसी ने लुकमान हकीम से पूछा, "आपने शिष्टाचार कहाँ से सीखा ?" उन्होंने उत्तर दिया, "मूर्खों से।" उसने पुनः प्रश्न किया, "किस प्रकार ?" लुकमान ने कहा, "उनकी जो बात पसन्द नहीं आई वह मैंने छोड़ दी।" आप भी दूसरों के दुर्गुणों को छोड़कर उनके गुणों को ग्रहण कीजिये।

जीवन का तीन-चौथाई आधार जीवन का चाल-चलन है। शिष्टता से जीवन में विनय और नम्रता के भाव जागृत होते हैं और सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है, अतः शिष्ट बनो।

□

: २२ :

प्रातःकाल उठो !

वेद का उपदेश है—

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति।

(ऋ० १ । १२५ । १)

प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाला व्यक्ति रत्नों को धारण करता है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने भी कहा है—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र सर्वाघशान्त्यर्थं स्मरेच्च परमेश्वरम्॥

अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने, जीवन को सुखमय और आयु को दीर्घ बनानेवाले व्यक्ति को ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिये और पापों से बचने के लिए प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये।

भोले बाबा ने भी बहुत सुन्दर लिखा है—

चौथे पहर में रात के जब पुण्य ब्राह्ममुहूर्त हो।
दे त्याग निद्रा प्रथम ही मत नींद में अनुरक्त हो॥

न केवल भारतीय विद्वानों ने, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रातः उठने के महत्त्व को अनुभव किया है—

Early to bed and early to rise, makes a man healthy, wealthy and wise.

जल्दी सोनेवाला और प्रातःकाल जल्दी उठनेवाला व्यक्ति आरोग्यवान्, भाग्यवान् और ज्ञानवान् होता है।

जो व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ और नोरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें ब्राह्ममुहूर्त में अवश्य ही उठ जाना चाहिये। रात्रि के अन्तिम प्रहर अर्थात् सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व उठ जाना चाहिए। यही ब्राह्ममुहूर्त है। देश, काल और ऋतुओं के तारतम्य के अनुसार प्रातः चार बजे से लेकर पाँच बजे तक का समय ब्राह्ममुहूर्त माना जाता है। इस समय उठने से शरीर स्वस्थ, नीरोग और फुर्तीला बनता है। चित्त प्रसन्न रहता है। आलस्य दूर भाग जाता है। बुद्धि तीव्र होती है। आत्म-चिन्तन और प्रभु-भक्ति के लिए भी यही समय सर्वोत्तम है। अतः प्रातः उठने का अभ्यास डालिये।

प्रातःकाल उठकर सबसे पूर्व प्रभु-वन्दन कीजिये। फिर वृद्धजनों, माता-पिता, बन्धु-बान्धव आदि को श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक नमस्कार कीजिये। तदनु अपनी जिह्वा को अच्छी प्रकार साफ करके नासिका द्वारा थोड़ा जल-पान कीजिये। इसे उषा-पान कहते हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। उषा-पान से बुद्धि बढ़ती है, नेत्र-ज्योति भी बढ़ जाती है। बाल असमय में ही सफेद नहीं होते और रोग दूर रहते हैं। उषा-पान से कोष्ठबद्धता दूर होकर मल-विसर्जन भी ठीक रूप से होने लगता है। सिर-दर्द और जुकाम तो पास भी नहीं फटकते। शरीर में एक नवीन स्फूर्ति, चेतना और आनन्द का संचार होने लगता है।

उषा-पान के पश्चात् शौच से निवृत्त होकर भ्रमण करना चाहिए। प्रातःकाल तमोगुण और रजोगुण की मात्रा न्यून होती है, सत्त्वगुण प्रधान रहता है। इस समय के भ्रमण से मानसिक वृत्तियाँ भी सात्त्विक और शान्त हो जाती हैं। प्रातः-काल की वायु में अमृतकण विद्यमान रहते हैं। रात्रि में चन्द्रमा

की किरणों के साथ जो अमृत बरसता है, प्रातःकाल की वायु उसी अमृत को लेकर मन्द-मन्द बहती है। इस वायु को वीर-वायु कहते हैं। जब यह अमृतमयी वायु हमारे शरीर को स्पर्श करती है तब शरीर में तेज, ओज, बल, शक्ति, स्फूर्ति और मेधा-बुद्धि का संचार होता है। मुख पर दीप्ति और चमक आ जाती है, मन प्रसन्न रहता है तथा शरीर नीरोग और स्वस्थ बनता है। रक्त शुद्ध हो जाता है। प्रतिदिन भ्रमण करने से पैरों और कमर में दृढ़ता आती है। यौवन सदा बना रहता है और आयु दीर्घ हो जाती है।

प्रातःकाल का उदय होता हुआ सूर्य भी, रात्रि के प्रभाव से हमारे शरीर में आनेवाली जड़ता और आलस्य को दूर करके हमारे जीवन में शक्ति का संचार करता है और रोगों को मार भगाता है। सूर्य अनेक रोगों का नाश करता है। यह वेद में कहा ही है—

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।

(ऋ० १।५०।११)

हे सूर्य! मेरे हृदय-रोग और पीलिया को नष्ट कर दे।

सूर्य की इस असीम शक्ति से लाभ उठाने के लिए पाश्चात्य विद्वानों ने भी कहा है—

Get as much sunshine as possible into yourself. Sunshine contains vitality. Admit lot of sunshine into your house.

जितना सम्भव हो, सूर्य-किरणों को अपने ऊपर लेना चाहिए। सूर्य-किरणें प्राणशक्ति का भण्डार हैं। घरों का निर्माण भी ऐसा होना चाहिए कि उनमें पर्याप्त मात्रा में सूर्य-किरणें प्रविष्ट हो सकें।

प्रातःकाल की शुभ वेला में उषा देवी अपने दोनों हाथों में स्वास्थ्य, आरोग्य, सुख, शान्ति, आनन्द, धन-धान्य, ओज-तेज, कान्ति, बल, बुद्धि, मेधा आदि दिव्य सम्पत्तियों को लेकर आती है और उन्हें खुले हाथों लुटाती है। जो प्रातःकाल जाग जाते हैं वे अपनी झोलियाँ भरते हैं। उनके जीवन उन्नत होते हैं। परन्तु जो लोग इस समय सोये रहते हैं वे उषा देवी की इस वर्षा से वंचित रह जाते हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

हर रात के पिछले पहरे में इक दौलत लुटती रहती है।
जो जागत है सो पावत है जो सोवत है सो खोवत है ॥

पशु भी प्रातःकाल उठ जाते हैं। पक्षी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर चहचहाने लगते हैं, कोयल कूकने लगती है। भ्रमर गुंजार कर उठते हैं, कमल खिल जाते हैं, पुष्पों पर एक नई आभा और कान्ति आ जाती है। सारा वातावरण ही मुखरित हो उठता है। युवको ! आप भी अपने जीवन में परिवर्तन लाओ, और प्रातः उठने का अभ्यास बनाओ।

यदि आप अपने भाग्य को जगाना चाहते हैं, यदि आप महापुरुष बनना चाहते हैं, यदि आप नीरोग और स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रातः उठने का अभ्यास डालो।

दिनचर्या का यह प्रथम भाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि यह भाग विधिपूर्वक सम्पन्न हो गया तो आपका सारा दिन सुन्दर रीति से व्यतीत होगा।

□

: २३ :

सदाचारी बनो !

वैदिक वाङ्मय का आधारभूत सिद्धान्त है "**आचारः परमो धर्मः।**" आचार सर्वोत्तम धर्म है। आचार-विचार से रहित मानव मानव नहीं, नर-पशु है। उसका कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि "**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।**" सदाचारशून्य व्यक्ति को तो वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

जिस प्रकार स्वर्ण के लिए कान्ति और पुष्प के लिए सुगन्धि की आवश्यकता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य के लिए सदाचार की आवश्यकता है।

सदाचार क्या है ? सदाचार दो शब्दों के मेल से बना है—सत्+आचार। आचार शब्द में 'चर्' धातु है जिसका अर्थ है गति, क्रिया। सदाचार का अर्थ हुआ "**सतां सज्जनानामाचारः सदाचारः**" इस व्युत्पत्ति के अनुसार सज्जन पुरुषों की जो क्रियाएँ, गति, चेष्टा, आचरण और आदर्श हैं उन्हीं का नाम सदाचार है।

सदाचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। सूर्योदय से पूर्व उठना, शौच, स्नान, सन्ध्या, स्वाध्याय, मातृ-पितृ-सेवा, अतिथि-सेवा, गुरुओं का आदर, परोपकार, अहिंसा, सत्य-भाषण, कर्त्तव्यपालन, ब्रह्मचर्य आदि सभी उत्तम गुणों का समावेश सदाचार में हो जाता है।

सदाचार और दुराचार के गुण-दोषों का वर्णन करते हुए महर्षि मनु लिखते हैं—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

(मनु० ४ । १५६)

आचार से वेदोक्त सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, पुत्र-पौत्रादि उत्तम सन्तानें प्राप्त होती हैं, अक्षय धन मिलता है और दुर्गुणों का नाश होता है।

इसके विपरीत—

दुराचारी हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

(मनु० ४ । १५७)

दुराचारी मनुष्य की संसार में सर्वत्र निन्दा होती है। वह सर्वदा दुःखी और रोगी रहता है तथा अल्पायु होता है।

महात्मा बुद्ध ने भी एक सुन्दर बात लिखी है—

चन्दनं तगरं वापि उत्पलमथ वार्षिकी ।
एतेषां गन्धजातानां शीलगन्धोऽनुत्तरः ॥

(धम्मपद ४ । १४)

चन्दन या तगर, कमल या जुही, इन सभी की सुगन्धों से सदाचार की सुगन्ध कहीं श्रेष्ठ और उत्तम है।

तगर और चन्दन से जो गन्ध फैलती है वह तो अल्प मात्रा में होती है। सदाचारियों की सुगन्ध तो देवताओं तक में फैलती है। इतना ही नहीं, मनुष्य मर जाता है परन्तु उसकी सुगन्ध फिर भी मनुष्यों को सुवासित और सुरभित करती रहती है।

सदाचारी मनुष्य आकर्षण का केन्द्र बनता जाता है। शत्रु भी सदाचारी की प्रशंसा करते हैं। सदाचारी का सर्वत्र आदर और सम्मान होता है। पारलौकिक उन्नति के लिए तो सदाचार

की आवश्यकता है ही, परन्तु इस संसार-सागर को तरने के लिए भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किसी कवि ने क्या सुन्दर कहा है—

जिसे प्राण-प्यारा सदाचार होगा,
वही वीर संसार से पार होगा।
वही नाम का धर्मधारी तरेगा,
भला काठ का केहरी क्या करेगा॥

पाश्चात्य विद्वानों ने भी सदाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। नेपोलियन बोनापार्ट कहता है—

Be a man of action and high character.

कर्मशील और सदाचारी बनो।

साउथवैल्स ने लिखा है—

The man of upright life,
Whose guiltless heart is free,
From all dishonest deeds,
Or thoughts of vanity.

अर्थात् वही मनुष्य वास्तव में मनुष्य है जिसका हृदय निर्दोष और पवित्र है, जिसने जीवन में कभी बेईमानी या बुरा कर्म नहीं किया और जिसका मन अभिमान से शून्य है।

सदाचार जीवन है, अमृत है, और दुराचार मृत्यु है। कोई मनुष्य बलवान्, विद्वान् और धनवान् तो हो परन्तु आचारवान् न हो तो वह जीते-जी ही मरा हुआ है। नहीं-नहीं, वह तो मरे हुए से भी गया-बीता है क्योंकि मरा हुआ व्यक्ति कोई कुकर्म और अधर्म नहीं कर सकता, परन्तु आचारहीन व्यक्ति जब तक जीता है, लोक-दुःख का कारण बनता है, लोगों को उल्टे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

सदाचार उन्नति की सीढ़ी है और स्वर्ग का द्वार है। अपने हृदय-रूपी उपवन में प्रेम-रूपी कमल, पवित्रता-रूपी गुलाब, साहस-रूपी चम्पा, नम्रता-रूपी मन्दार और दया-रूपी रात की रानी को आरोपित कीजिये। सहृदय, दानी, मधुर-भाषी, प्राणि-मात्र के सेवक, निष्पक्ष और समदर्शी बनो। सुशील बनो। श्रेष्ठ बनो। मधुर स्वभाव बनाओ। यदि आपके साथ कोई धृष्टता भी करता है, तो भी उसके साथ उत्तम व्यवहार करो। किसी के साथ दुर्व्यवहार मत करो।

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।
बोये बिरवा आक का, आम कहाँ ते होय॥

जैसे चमक के बिना मोती का कोई मूल्य नहीं, इसी प्रकार सदाचार से हीन मनुष्य का जीवन भी किसी काम का नहीं होता। यदि कोई मनुष्य समग्र वेदों का पारंगत हो परन्तु सदाचार-सम्पन्न न हो तो वेद उसकी रक्षा नहीं करेंगे। वेद दुराचारी मनुष्य को ऐसे ही छोड़ देते हैं जैसे पंख निकलने पर पक्षी अपने घोंसलों को छोड़ देते हैं। अतः यदि अपना कल्याण चाहते हो, दीर्घ जीवन और अमरत्व चाहते हो तो सदाचारी बनो।

□

: २४ :

निर्भय बनो !

यदि उपनिषदों से बम की तरह आनेवाला और बम-गोले की तरह अज्ञानता के समूह पर बरसनेवाला कोई शब्द है तो वह है 'निर्भयता'। (विवेकानन्द)

'भय' मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। यह मनुष्य की उन्नति में बाधक है। यह मनुष्य की शान्ति को भंग करके उसकी शक्ति को समाप्त कर देता है। यह शरीर पर बुरा प्रभाव डालकर निर्बलता उत्पन्न करता है।

भय है क्या ? भय चित्त की एक वृत्ति है जो अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। यह हमारी आत्मा का गुण नहीं है। आत्मा तो अजर और अमर है। वेद कहता है—

वायुरनिलममृतमथेदम्। (य० ४० । १५)

आत्मा अभौतिक और अमर है। इसी तथ्य को गीता में इस प्रकार प्रकट किया गया है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(गीता० २० । २०)

यह आत्मा न उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर न रहेगा—यदि ऐसा कहा जाय, तो यह भी ठीक नहीं। यह तो सदा रहेगा। यह आत्मा तो अज है, कभी जन्म ग्रहण नहीं करता तथा पुरातन है। शरीर के नाश होने पर इसका नाश नहीं होता।

जो इस रहस्य को जान लेता है, जिसे आत्मा की अमरता का बोध हो जाता है फिर उसे भय कहाँ ? आत्मा की अमरता का बोध हुआ था आत्म-बलिदानी वीर हक़ीकतराय को। उसने हँसते-हँसते धर्म की वेदी पर अपने शरीर की बलि दे दी।

आत्मा की अमरता को जानकर ही तो महर्षि दयानन्द भी निर्भय बने थे। जब राव कर्णसिंह महर्षि दयानन्द पर तलवार लेकर झपटा तब स्वामी जी तनिक भी कम्पित नहीं हुए। उन्होंने उस तलवार को हाथ में पकड़ उसके दो टुकड़े कर दिये।

ग्रीस (यूनान) के तत्ववेत्ता सुकरात से चिढ़कर कुछ लोगों ने उनके ऊपर यह आरोप लगाया कि वह ऐथन्स के लड़कों को उलटी शिक्षा देकर उन्हें बिगाड़ता है। सुकरात ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण उपस्थित किये परन्तु कोई लाभ न हुआ। उन्हें मृत्यु-दण्ड की आज्ञा सुनाई गई। वहाँ की प्रथा के अनुसार उन्हें विष का प्याला पीने के लिए दिया गया। महात्मा सुकरात तनिक भी नहीं घबराये और अपने शिष्यों को आत्मा की अमरता का उपदेश करते हुए निर्भयतापूर्वक विष के प्याले को पी गये। यह है निर्भयता ! मृत्यु सामने आ खड़ी हो, फिर भी हँसना और मुस्कराना।

कठिनाइयों, आपत्तियों और विघ्न-बाधाओं से डरो मत। श्री तिलक महोदय लिखते हैं—

"कठिनाइयाँ, हमारे साथ अशेष उपकार करती हैं। वे हमारे अन्दर साहस भरती हैं और हमें सब प्रकार से योग्य बनाती हैं। अतएव वीरो ! इनसे डरो नहीं, इन्हें प्रसन्नता से गले लगाओ।"

चाहे आकाश सिर पर गिर पड़े, चाहे हिमालय पर्वत मार्ग

रोककर खड़ा हो जाय, चाहे मृत्यु सामने अड़ जाय, परन्तु फिर भी "**मा बिभेः**" मत डरो।

डर को मार भगाने के लिए धैर्य और साहस को अपना किला बना लो, फिर भय आपके दुर्ग से टकराकर चकनाचूर हो जायेगा। जिस प्रकार समुद्र के किनारे खड़ी हुई चट्टान पर समुद्र की लहरों का तनिक भी प्रभाव नहीं होता, इसी प्रकार से साहसी मनुष्य भी संसार के झंझावातों, आँधियों और तूफ़ानों से तनिक भी भयभीत नहीं होता। वह आपत्तियों और कष्टों में चट्टान की भाँति अडिग और दृढ़ होकर खड़ा रहता है तथा अन्त में विजय प्राप्त करता है।

भय को दूर करने के लिए भय के कारणों पर चिन्तन करो और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करो, आपको निर्भयता प्राप्त होगी।

भय का एक बहुत बड़ा कारण है अविद्या। बाल्यकाल में माता-पिता भूत-प्रेत आदि के कुसंस्कार बच्चों में डाल देते हैं। बड़े होने पर भी ये संस्कार भय का कारण बने ही रहते हैं। अविद्या को दूर करके विद्या (ज्ञान) उपार्जन कीजिये। आपके काल्पनिक भय दूर भाग जायेंगे।

As a man thinks, so he becomes.

मनुष्य जैसा सोचता है वैसा बन जाता है। आप महापुरुषों के जीवन का अवलोकन कीजिये। भीष्म पितामह के वीरतापूर्ण कार्यों पर दृष्टि डालिये। मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम, श्री कृष्ण और महर्षि दयानन्द के जीवन का अध्ययन कीजिये। आपके जीवन में भी निर्भयता का संचार होगा।

मानस-शास्त्रियों का कहना है कि पूर्ण निर्भयता प्राप्त नहीं की जा सकती। हाँ, भय पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ

प्रयत्न अवश्य किये जा सकते हैं। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। उपनिषद् डिण्डिम-घोष के साथ कहते हैं—

अभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ।।

(बृ० ४ । ४ । २५)

निश्चय ही ब्रह्म निर्भय है; जो उस ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म के समान ही निर्भय हो जाता है।

जो ईश्वर की शरण में आ गया, जो ईश्वर को आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, चहुँ ओर, दसों दिशाओं में सर्वदा, सर्वथा अपने अंगसंग जानता है, जो ईश्वर को अपने नीचे का बिस्तर और ऊपर का ओढ़ना समझता है, उसे डर और भय कैसा ?

युवको ! अपनी शक्ति को पहचानो ! तुम शरीर नहीं, आत्मा हो, आत्मा ! तुम तो अमृतपुत्र हो। फिर भय कैसा ?

"जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र, द्यौ और पृथिवी, रात्रि और दिन न डरते हैं और न काँपते हैं, इसी प्रकार हे मेरे प्राण ! तू भी मत काँप।" ऐसी भावना बनाइये।

वेद माता तुझे कैसा सुन्दर सन्देश दे रही है—

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व । (य० ६ । ३५)

मत डर, मत काँप ! बल, पराक्रम और साहस धारण कर !

□

: २५ :

क्षमाशील बनो !

क्षमा की गौरव-गरिमा का गान करते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने ठीक ही कहा है—

क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः ॥

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है । क्षमा यज्ञ है और क्षमा शम (मनोनिग्रह) है ।

पाश्चात्य विद्वान् जॉन स्टार्ट मिल लिखते हैं—

Forgiveness is better than revenge. Forgiveness is the sign of gentle nature, but revenge is the sign of savage nature.

अर्थात् बदला लेने की अपेक्षा क्षमा अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि क्षमाशीलता उत्तम स्वभाव का लक्षण है और बदले की भावना जंगली स्वभाव का लक्षण है ।

क्षमाशीलता का आदर्श महर्षि दयानन्द से सीखिये । ऋषिवर एक स्थान पर ठहरे हुए थे । रात्रि को उनके प्रवचन होते । उनका मान-सम्मान और उनके द्वारा मूर्तिपूजा तथा मृतक-श्राद्ध का खण्डन सुनकर एक पण्डा प्रतिदिन उनकी कुटी के सामने आता और उन्हें गालियाँ प्रदान करता । स्वामी जी मुस्कराकर रह जाते । एक दिन स्वामी जी के एक भक्त ने उन्हें बहुत सारे फल भेजे । उन फलों को बाँटने के पश्चात् भी कुछ फल बच गये

तो स्वामी जी ने वे फल अपने सेवक द्वारा उस गाली प्रदान करनेवाले पण्डे को भिजवाये। स्वामी जी के इस क्षमाशीलता के व्यवहार से पण्डे का हृदय-परिवर्तन हो गया और वह स्वामी जी का भक्त बन गया।

एक बार अनूपशहर में एक व्यक्ति ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। स्वामी जी को जब पता चला तो वे गंगा के किनारे पहुँचे और न्यौली आदि क्रियाओं से विष को बाहर निकाल अपने आसन पर आ विराजे। जब वहाँ के तहसीलदार को इस घटना का पता लगा तो उसने अपराधी को पकड़वाकर जेल में डाल दिया और स्वामी जी को सूचना दी। तहसीलदार महोदय का विचार था कि अपराधी के पकड़े जाने से स्वामी जी बहुत प्रसन्न होंगे, परन्तु स्वामी जी ने कहा, "मैं संसार को कैद कराने नहीं आया अपितु बन्धन से मुक्त कराने आया हूँ, अतः उसे छोड़ दो।"

कैसी अद्भुत एवं आदर्श क्षमाशीलता है!

इस सम्बन्ध में सन्त एकनाथ जी की कथा भी अत्यन्त मार्मिक और शिक्षाप्रद है। एक दिन श्री एकनाथ जी गोदावरी में स्नान करके अपने घर की ओर लौट रहे थे। मार्ग में एक विशाल वृक्ष पर से किसी ने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। महाराज परम शान्त रहे। वे पुनः स्नान करके लौटे तो उस व्यक्ति ने वही कुकृत्य दोहराया। फिर तीसरी बार और चौथी बार: इसी प्रकार एक ही दिन में महाराज ने १०८ बार स्नान किया और उसने १०८ बार कुल्ले किये। महाराज अपनी क्षमाशीलता पर अटल थे तो वह व्यक्ति अपनी दुष्टता का परिचय दे रहा था। अन्त में उसका धैर्य छूट गया। वह थककर नीचे उतर आया और सन्त जी के चरणों में गिरकर कहने लगा,

"महाराज ! मुझे क्षमा कीजिये। मेरे जैसे पतित के लिए नरक में भी स्थान नहीं है। मैं प्रतिदिन आपके ऊपर कुल्ला किया करता था और आप शान्त तथा गम्भीर रहते थे। आज तो मैंने अपनी दुष्टता की सीमा ही तोड़ दी; परन्तु आपका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। मैं आपके चरणों में गिरकर अपनी दुष्टता का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।" यवन फूट-फूटकर रो रहा था।

"तुम इतने दुःखी और चिन्तित क्यों होते हो भाई ! तुमने तो मेरे साथ उपकार ही किया है। तुम्हारी कृपा से आज मुझे १०८ बार स्नान का फल मिला है। तुम धन्य हो। कितना परोपकार है तुम्हारा मुझपर ?" सन्त के उपदेश से यवन का तन-मन शीतल हो गया।

आज हमारे जीवन में से क्षमाशीलता निकल रही है। आज के युवकों में बड़ी गर्मी है। वे किसी का एक शब्द नहीं सुन सकते। मार्ग में जरा किसी की साइकिल छू गई तो पारा पूरे १०० डिग्री पर पहुँच जाता है। माता जी या पिता जी ने कुछ कह दिया तो बस घर से ही लापता। समाचारपत्रों में ऐसे भगोड़ों के विज्ञापन प्रायः छपते रहते हैं। कुछ तो इस सीमा को भी लाँघ देते हैं। वे कुतुब से कूदकर या यमुना में डूबकर आत्म-हत्या कर लेते हैं। यदि अध्यापक परीक्षा में नकल करने से रोक दे अथवा कोई कटु शब्द कह दे तो उसकी आफ़त आ जाती है। सायंकाल तक अध्यापक महोदय की पिटाई हो जाती है। यह तो कोई उच्चादर्श नहीं है।

क्षमाशीलता का पाठ पृथिवी से सीखो। पृथिवी कैसी क्षमाशील है ! पृथिवी को कितना खोदा जाता है परन्तु फिर भी वह सबका पालन और पोषण ही करती है। ज़रा-ज़रा-सी बात

पर आपे से बाहर मत हो जाओ। यदि अनजान में, असावधानी में किसी से कोई अपराध हो जाय तो वह क्षमा के योग्य ही है।

क्षमाशील बनो! क्रोध मत करो! क्रोध तो अपने को ही हानि पहुँचाता है। यह शरीर को निर्बल बनाता है और बुद्धि को बिगाड़ता है। क्रोध करने से ज्ञान-तन्तु जल जाते हैं। साथ ही क्रोध करने से कोई अच्छा परिणाम भी नहीं निकलता। क्रोध करने से टूटा हुआ शीशा नहीं जुड़ सकता और न फैला हुआ दूध पुनः बाल्टी में एकत्र हो सकता है। कभी-कभी तो क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य ऐसी बातें कर बैठता है जिनपर बाद में उसे स्वयं पश्चात्ताप होता है, अतः क्रोध कभी मत करो। क्षमाशीलता का स्वभाव बनाओ।

अरस्तु के जीवन की घटना का ध्यान करो। एक दिन यह सुनने पर कि किसी व्यक्ति ने उनकी अनुपस्थिति में उन्हें गाली दी है, वे बड़े प्रसन्न हुए और कहा, "मेरी अनुपस्थिति में वह मुझे कोड़े भी मार सकता है।" आप भी ऐसा ही बनने का प्रयत्न करें।

'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा वीरों का आभूषण है। अतः क्षमाशील बनो। परन्तु चेतावनी के रूप में गुरु गोविन्दसिंह जी के इन शब्दों को सदैव स्मरण रक्खो—"यदि कोई दुर्बल मनुष्य तुम्हारा अपमान करे तो उसे क्षमा कर दो क्योंकि क्षमा करना ही वीरों का काम है, परन्तु यदि अपमान करनेवाला बलवान् हो तो उसे अवश्य दण्ड दो।"

□

: २६ :

गुरुओं का आदर करो !

गुरु की महिमा का बखान करते हुए किसी ने कितना सुन्दर लिखा है—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

जो गुरु अज्ञान-अन्धकार से अन्धे बने हुए लोगों की आँखों में ज्ञानरूपी सुर्मे की सलाई लगाकर उन्हें खोल देता है, उस गुरु को नमस्कार है।

आचार्य ज्ञान-ज्योति प्रदान कर बालक का निर्माण करता है। गुरु ही आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के अज्ञान का नाश कर बालकों को वस्तुतः मनुष्य बनाता है। गुरु के सिखाये बिना कोई भी विद्या नहीं आती। तैरना सीखने की विधि पुस्तकों में लिखी हुई है परन्तु उसे पढ़कर कोई तैरना नहीं सीख सकता। पुस्तकों को पढ़कर ग्रन्थों के रहस्य नहीं खुलते। वे रहस्य तो गुरु-चरणों में बैठकर ही खुल सकते हैं।

गुरु अपनी विद्या सरल, विनीत, दयालु और गुरु में भक्ति रखनेवाले शिष्यों को ही प्रदान करते हैं। अर्जुन और दुर्योधन एक ही गुरु के पास तो पढ़े थे, परन्तु दुर्योधन अर्जुन-जैसा धनुर्धारी न बन सका, क्यों ? दुर्योधन में गुरु के लिए वह आदर-भावना नहीं थी जो अर्जुन में थी। यदि आप गुरु से विद्या सीखना चाहते हैं तो गुरुओं का आदर करो।

गुरु-सेवा का आदर्श योगेश्वर श्री कृष्ण से सीखिये। श्री कृष्ण राजकुमार थे परन्तु अपने गुरु के लिए वे भी समिधाएँ लाया करते थे।

एकलव्य की गुरुभक्ति भी आदर्श थी। जब गुरु ने एकलव्य का अद्भुत बाणकौशल देखा तो वे चकित रह गये। उन्होंने गुरु-दक्षिणा में एकलव्य से दाहिने हाथ का अंगूठा माँगा। एकलव्य ने किस लालसा से शस्त्राभ्यास किया था! उसकी आशा पर पानी फिर रहा था। परन्तु उसने बिना किसी हिचक के अपना अंगूठा काटकर गुरु के अर्पण कर दिया। धन्य हो एकलव्य!

अब तनिक आरुणि की गुरुभक्ति भी देखिये। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। महर्षि धौम्य ने अपने शिष्य आरुणि को धान के खेत की मेंड़ ठीक करने के लिए भेजा। एक स्थान पर खेत की मेंड़ टूटी हुई थी। आरुणि वहाँ मिट्टी रखता था और तीव्र जलप्रवाह उसे बहा ले जाता था। अन्य कोई उपाय न देखकर आरुणि स्वयं टूटी मेंड़ के स्थान पर लेट गया। उसका शरीर शीतल होकर अकड़ने लगा, दाँत-से-दाँत बजने लगे। वेदना का पार नहीं था; परन्तु आरुणि उठ जाय और गुरु के खेत का पानी बाहर निकल जाय, यह नहीं हो सकता। सूर्य अस्त हो गया। रात्रि का अन्धकार बढ़ने लगा। अब तो आरुणि के न लौटने से गुरुदेव भी चिन्तित हुए। अपने शिष्यों को साथ लेकर ढूंढने निकले। उनकी पुकार सुनकर आरुणि उठा। उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे महर्षि उद्दालक बना दिया।

गुरु जी ने उपमन्यु का आहार बन्द कर दिया। उसकी लाई हुई भिक्षा भी वे रख लेते। दूसरी बार भिक्षा से भी रोक दिया। गौओं का दूध पीने लगा तो उसके लिए भी मना कर

दिया। जब वह बछड़ों के मुख से गिरे फेन पर निर्वाह करने लगा तो वह भी निषिद्ध हो गया। इतना सब-कुछ होते हुए भी उसकी गुरु-भक्ति में कोई अन्तर नहीं आया।

सत्यकाम अपने गुरु जी की आज्ञा से गायें चराते रहे। वरतन्तु ने अपने गुरु को गुरु-दक्षिणा देने के लिए कितने कष्ट सहे ! महर्षि दयानन्द अपने गुरु विरजानन्द को स्नान कराने के लिए प्रतिदिन यमुना की धारा से जल लाया करते थे। गर्मी हो या सर्दी, आँधी हो या बरसात, उनके इस कार्य में कभी भी व्यतिक्रम नहीं हुआ।

स्वामी जी पाठशाला में झाड़ू भी लगाया करते थे। एक दिन झाड़ू लगाकर कूड़े को बाहर फेंकने के लिए वे कोई वस्तु खोज रहे थे कि गुरु जी का पैर कूड़े पर पड़ गया। गुरु जी ने अप्रसन्न होकर दयानन्द को लाठी से पीटा। महर्षि दयानन्द अपनी चोट को भूल गुरु जी के हाथ को सहलाते हुए कहने लगे, "गुरु जी, मेरा शरीर तो वज्र के समान कठोर है। इसके ऊपर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को पीड़ा पहुँचती है, अतः आप मुझे न मारा करें।" इस चोट का चिह्न अन्त समय तक महर्षि के शरीर पर बना रहा जिसे देखकर वे दण्डी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किया करते थे।

इतिहास के पन्नों से इस प्रकार की सैकड़ों बोधक घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। उपर्युक्त घटनाओं से यह तो अत्यन्त स्पष्ट है कि जिन्होंने गुरुओं की सेवा की, उनका आदर और सम्मान किया, संसार में उनकी कीर्ति-चन्द्रिका छिटकी और वे अमर हो गये।

आज के विद्यार्थी आये दिन हड़ताल के लिए ताल ठोकते हैं। अपने अध्यापकों को छुरा और चाकू दिखाना तो साधारण

बात है। अभी कुछ समय पूर्व बरेली के विद्यार्थियों ने अपने प्रिंसिपल को १०-१२ घण्टे कमरे में बन्द रखा। पुलिस बुलानी पड़ी। अलीगढ़ में तो एक अध्यापक को मृत्यु के घाट ही उतार दिया। परिणामस्वरूप आज के विद्यार्थियों में न पाण्डित्य ही आता है और न उनका कहीं आदर और सम्मान है। आज का विद्यार्थी जब स्नातक होकर निकलता है और नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटकता है तब उसे प्रत्येक स्थान पर No vacancy (स्थान नहीं है) का बोर्ड लगा दिखाई देता है। जिस क्षेत्र में जाते हैं वहीं असफलता मिलती है, क्यों ? मैं समझता हूँ इसका कारण है गुरुओं का शाप। यदि आप उन्नत होना चाहते हैं तो **'आचार्यदेवो भव'**—आचार्य को देवस्वरूप जानो। उनका आदर और सत्कार करो। सदा स्मरण रक्खो—

तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम्।
नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज ॥

(पद्म० पु० भूमि खण्ड १२३। ५०)

हे द्विज ! संसार में भटकनेवाले मनुष्यों को तारने के लिए गुरु के समान बन्धन-नाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।

□

: २७ :

उदार बनो !

वैदिक संस्कृति हमें उदारता का पाठ पढ़ाती है। वैदिक संस्कृति में दूसरों के प्रति सदा उदारता का भाव रहा है। वैदिक संस्कृति का आदर्श है—

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

(हितोपदेश)

"यह मेरा है, यह दूसरे का है"—यह संकीर्ण हृदयवालों की भावना है। उदारचित्तवाले तो सारे संसार को अपना कुटुम्ब समझते हैं।

इसी स्वर में स्वर मिलाकर आंगल भाषा के एक कवि ने भी कहा है—

The whole country is my home,
All men are my brethren,
And virtue is my religion.

अर्थात् सारा संसार मेरा घर है, सब मानव मेरे भाई हैं और सदाचार मेरा धर्म है।

इन भावनाओं को अपने में भरते हुए आप भी उदार बनो। उदारता का पाठ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से पढ़ो। भारतेन्दु एक अत्यन्त समृद्ध वैश्य-परिवार से सम्बन्ध रखते थे। एक बार ऐसी परिस्थिति आई कि उनके पास लिफ़ाफ़ों पर टिकट लगाने के लिए भी पैसे नहीं रहे। जो पत्र आते थे उनका उत्तर लिख

सादा लिफ़ाफ़े में रख और पता लिखकर मेज पर रखते जाते थे। एक दिन एक मित्र मिलने आये तो सारी परिस्थिति को भाँप गये। उसने नौकर को पाँच रुपये देकर टिकट मँगवाये तथा अपने हाथ से टिकट लगाकर पत्रों को पोस्ट-ऑफिस में डलवा दिया। इस घटना के पश्चात् जब भी वे मित्र भारतेन्दु जी के यहाँ आते तो वे उनकी जेब में पाँच रुपये का नोट जबर-दस्ती डाल देते थे। एक दिन मित्र ने कहा—"इसका तात्पर्य यह है कि मैं आपके यहाँ आया ही न करूँ ?" तब भारतेन्दु जी ने हँसते हुए उत्तर दिया "आपने ऐसे समय में वह पाँच रुपये का नोट मुझे उधार दिया था कि यदि मैं प्रतिदिन पाँच रुपये का एक नोट आपकी जेब में डालता रहूँ, तो भी वर्ष के पश्चात् मेरी मानवता मुझसे कहेगी कि अब भी तुझपर उक्त मित्र का पाँच रुपये का ऋण शेष है।"

वैदिक संस्कृति की उदारता का एक और उदाहरण देखिये—

स्वामी रामतीर्थ को बी० ए० की परीक्षा का शुल्क भेजना था। रुपये पास नहीं थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी पाँच रुपये कम रह गये। रामतीर्थ जब चन्दू हलवाई की दुकान के पास से निकले तो राम के उदास मुखमण्डल को देखकर उसने कारण जानना चाहा। राम ने कहा, "मेरे पास परीक्षा का शुल्क भेजने के लिए पाँच रुपये कम हैं।" हलवाई ने उसी समय पाँच रुपये दे दिये। राम प्रोफ़ैसर बन गये और प्रतिमास हलवाई को पाँच रुपये भेजने लगे। एक दिन राम उधर से निकले तो हलवाई ने कहा, "अब आप दूध पीने नहीं आते। आपके पैंतीस रुपये मेरे पास जमा हो गये हैं और प्रतिमास पाँच रुपये का मनीऑर्डर आ रहा है।" राम ने कहा, "यह सब तो उस पाँच रुपये के बदले में हैं जो कभी आपने मुझे उधार दिये थे।" कैसी उदारता है !

वैदिक संस्कृति की उदात्त भावना की छाप वैदिक संस्कृति का अध्ययन करनेवाले दाराशिकोह पर भी पड़ी थी। पितृद्रोही औरंगज़ेब अपने पिता को क़ैद में डाल स्वयं राजगद्दी का अधिकारी बन गया। अपने मार्ग को निष्कण्टक बनाने के लिए उसने अपने दो भाइयों को यमलोक पठा दिया। राज्य के वास्तविक अधिकारी दारा को बन्दी बनाकर उसे एक बूढ़ी हथिनी की नंगी पीठ पर बैठाकर देहली के प्रसिद्ध बाज़ारों में घुमाने की आज्ञा दी गई।

दोपहर का समय, चिलचिलाती धूप, हथिनी की नंगी पीठ, क़ैदी का वेश और प्रजा के भारी समूह में से निकलना, दारा को सहस्रों भालों की चोट से अधिक वेदना हो रही थी। वह दृष्टि नीची किये बैठा रहा। भूलकर भी उसने आँख ऊपर उठाकर न देखा। सहसा उसके कानों में एक आवाज़ आई—"दारा! तू जब भी निकलता था तब दान करता हुआ और धन लुटाता हुआ निकलता था। आज तुझे क्या हो गया है? क्या आज हम तेरी कृपा से वंचित ही रह जायेंगे?"

दारा ने दृष्टि ऊपर उठाई तो एक पागल फ़क़ीर को उक्त शब्द कहते देखा। दारा ने अपने कन्धे पर पड़ा दुपट्टा उसकी ओर फेंककर पुनः दृष्टि नीची कर ली। फ़क़ीर "दारा ज़िन्दा-बाद" के नारे लगाने लगा। प्रजा दारा की इस उदारता पर साधुवाद देने लगी।

युवको! आप भी उदारतापूर्वक अपने साथियों की सहायता करो। जो गिरे हुए हैं उन्हें उदारतापूर्वक गले लगाओ। जो दीन-हीन हैं उन्हें धैर्य और आश्वासन दो। जो दुःखी हैं उन्हें सान्त्वना दो। जिन्हें आपकी सेवा की आवश्यकता हो उनकी सेवा करो।

महारानी एलिज़ाबेथ के समय में जटफेन में स्पेनिश लोगों के साथ जो युद्ध हुआ, उसमें प्रसिद्ध वीर सर फ़िलिप सिडनी घायल होकर रणभूमि में गिर पड़ा। उस समय वह अत्यन्त प्यासा था। उसे प्यासा जानकर एक सिपाही ने जल का प्याला उसके सामने रख दिया। जब वह जल पीने लगा तो उसने देखा कि एक अन्य सिपाही उससे भी अधिक घायल होने के कारण प्यास से व्याकुल है तो सिडनी महोदय ने वह प्याला उसकी ओर बढ़ाकर कहा, "Thy need is greater than mine" अर्थात् मेरी अपेक्षा तुमको पानी की अधिक आवश्यकता है। कितनी महान् उदारता है! स्वार्थ-त्याग का कैसा ज्वलन्त उदाहरण है! युवको, आप भी ऐसे ही उदार बनो।

लोगों ने महर्षि दयानन्द को विष के प्याले पिलाये परन्तु उनकी उदारता में कोई अन्तर नहीं आया। वे लोगों को अमृत ही पिलाते रहे। कैकेयी ने मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम को वन में भिजवाया परन्तु राम फिर भी उनका आदर और सत्कार ही करते रहे। उनकी उदार भावनाओं में तनिक भी न्यूनता नहीं आई। आप भी वैदिक संस्कृति के इस गुण को अपने जीवन में धारण करके उदार बनो।

□

कर्त्तव्यपालक बनो !

संसार में जितने महापुरुष हुए, जिनकी कीर्ति से मनुष्य-जाति का इतिहास प्रकाशित है, वे सब अपने कर्त्तव्यपालन के बल पर ही महान् बन सके।

मानव की मानवता कर्त्तव्यपालन में सन्निहित है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्त्तव्य को दृढ़ता और निष्ठा से पालन करना चाहिये। वेद का आदेश है—

स्वेन क्रतुना संवदेत। (ऋ० १०। ३२। २)

मनुष्य अपने कर्म द्वारा बोले, अर्थात् केवल बातें न बनाये, कर्म करके दिखाये।

किसी पाश्चात्य विद्वान् ने भी ठीक ही कहा है—

An ounce of practice is better than a ton of precept.

भाव यह है कि बहुत कहने से थोड़ा करना अधिक उत्तम है। परन्तु आज अवस्था बिचित्र है। हमारी दशा उस ढपोल शंख की भाँति है जिससे कोई सौ रुपये माँगता था तो वह सहस्र, लक्ष और करोड़ देने की बात कहता था, परन्तु देता एक पैसा भी नहीं था। युवको ! कथन-मात्र से कुछ नहीं बनता। मिश्री-मिश्री कहने से मुख मीठा नहीं होता।

कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करे, विष से अमृत होय॥

किसी विद्वान् ने बहुत सुन्दर लिखा है—

A man of words not of deeds,
Is like a garden full of weeds.

अपने कर्त्तव्य का पालन न करके केवल बातें बनानेवाला व्यक्ति उस उद्यान के समान है जिसमें फूलों के स्थान पर व्यर्थ की घास-फूंस उगी हुई हो।

कहने की अपेक्षा करके दिखाओ, इसी में गौरव है, इसी में विजय है। एक विद्यालय में भाषण-प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। प्रतियोगिता का विषय था—"प्राणियों की सेवा कैसे की जा सकती है?" एक विद्यार्थी जो बहुत अच्छा बोलता था और प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए जिसने अपना नाम भी दिया हुआ था, बहुत देर से पहुंचा। जब साथियों और अध्यापकों ने उसके देर से आने का कारण पूछा तो उसने कहा, "जब मैं प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए आ रहा था तब मैंने देखा कि एक लड़के को चोट लग गई है और वह असहाय अवस्था में है। मैं उसे अस्पताल पहुँचाने चला गया। बस इसी से देर हो गई।" प्रतियोगिता में इस बालक को प्रथम पारितोषिक मिला। इसने क्रियात्मक रूप से करके दिखा दिया था कि प्राणियों की सेवा कैसे की जा सकती है।

कुमारो! कैसी उद्बोधक घटना है!

आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करो। विजय आपके चरण चूमेगी और आपके गले में जयमाला पहनायेगी। वेद के इस आदेश को सदा स्मरण रक्खो—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।

(अ० ७। ५०। ८)

मेरे सीधे हाथ में कर्म, कर्त्तव्य है और बायें हाथ में विजय है।

अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करो। संसार की समस्याओं और उलझनों से डरकर संसार छोड़कर मत भागो। अपितु—

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥

चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, हमें अकर्त्तव्य को न करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही चाहिये।

अपना कर्त्तव्य कीजिये और बिना किसी फल की अभिलाषा के। भारत-माता को स्वतन्त्र कराने के लिए अपने जीवन और जवानी को होमनेवाले अशफ़ाक़ जब फाँसी के तख्ते पर चढ़नेवाले थे तो उन्होंने लिखा था—

कुछ आरज़ू[1] नहीं है, है आरज़ू तो बस यह।
रख दे कोई ज़रा-सी ख़ाके-वतन[2] कफ़न में॥

कैसी भव्य भावना है! प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को समझकर उसका पालन करे, यही सच्ची सेवा और ईश्वरोपासना है। एक दूकानदार अपनी दूकान को ही ईश्वर का मन्दिर समझे। सबके साथ नम्रता का व्यवहार करे। सबको एक ही भाव पर वस्तुएँ दे, सत्य बोले और पूरा तोले। एक डॉक्टर अपने अस्पताल को ही अयोध्या, मथुरा और काशी समझे और रोगियों को ईश्वर की मूर्तियाँ। जनता-जनार्दन की सेवा ही ईश्वर की वास्तविक पूजा है। युवको! आप भी अपने विद्यालय को एक श्रेष्ठ और पवित्र तीर्थ

---

१. इच्छा, २. देश की मिट्टी।

समझो। अपने अध्यापकों को ईश्वर की मूर्तियाँ समझो। उनका आदर और सम्मान करो। अपने-आप को ज्ञानोपार्जन में लगा दो। ब्रह्मचर्य-अवस्था में आपका यही परम कर्त्तव्य है कि तृण से लेकर ब्रह्माण्ड तक का अधिक-से-अधिक ज्ञान उपार्जन करो।

किसी को जल्दी में कोई वचन मत दो। पहले सोचो और फिर बोलो। एक बार वचन देकर फिर उसका पालन करो।

प्रलोभनों में फँसकर अपने कर्त्तव्य से कभी भी विमुख मत होओ। अन्त में आप सबके लिए प्रभु से यही प्रार्थना है—

कभी न कर्त्तव्य - विमुख हों
चाहे कितना ही जर[1] या डर दो।
ऐसे आर्यकुमार जगत् में
जगदीश्वर पैदा कर दो॥

□

१. धन।

: २६ :

सेवा करो !

किसी उर्दू के कवि ने क्या खूब कहा है—

हमेशा के लिए रहना नहीं इस दारे-फ़ानी[1] में।
कुछ अच्छा काम कर लो चार दिन की जिन्दगानी में॥

अच्छा कार्य क्या है ? प्राणिमात्र की सेवा। सेवा मानव-जीवन का सच्चा भूषण, सौन्दर्य और शृंगार है। सेवा न केवल मानव-जीवन की शोभा है अपितु भगवान् की सच्ची पूजा है।

भूखे को भोजन दो, प्यासों को पानी पिलाओ, सोये हुओं को उठाओ और नासमझों को समझाओ। विद्या-रहितों को विद्या दो। दीन, दुर्बल, दुःखियों और रोगियों की तन, मन और धन से सहायता करो।

मानव-जीवन का सच्चा उपयोग सेवा में है। 'सेवा से मेवा मिलता है।' अतः अपने जीवन को सेवा में लगाइये। अपने मित्रों की सेवा कीजिये, अपने प्रेमियों की सेवा कीजिये, घर में आये हुए अतिथियों की सेवा कीजिये। आपके पास जो धन, अन्न, वस्त्र और शक्ति है उसे दूसरों की सेवा में लगा दीजिये। सेवा करते-करते आप सर्वप्रिय बन जायेंगे। सभी लोग आपको सहयोग देने लगेंगे जिससे आप शीघ्र ही अपने लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे। सेवा की महिमा का वर्णन करते हुए सन्त तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—

---

१. संसार।

परहित बस जिनके मन माहीं।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।
परहित लागि तजै जो देही।
सन्तत सन्त प्रसंसत तेही ।।

एक और कवि लिखते हैं—

तन से सेवा करो जगत की, मन से प्रभु के हो जाओ।
शुद्ध बुद्धि से तत्त्वनिष्ठ हो, मुक्त अवस्था को तुम पाओ ।।

सेवा का आदर्श स्वामी श्रद्धानन्द जी से सीखिये। बात १९१६ की है। गुरुकुल कांगड़ी के पञ्चम श्रेणी के ब्रह्मचारी देवदत्त को टाइफ़ाइड हो गया था। उसकी देखभाल के लिए ब्रह्मचारियों की ड्यूटी लगी हुई थी। रात्रि के १२।। बजे थे। ड्यूटी पर श्री सोमदत्त जी विद्यालंकार बैठे थे। सहसा रोगी के जागने और कराहने की आवाज़ आई। सोमदत्त ने माथे पर हाथ रखकर पूछा, "क्यों देव! क्या बात है?" "उल्टी-सी आती मालूम देती है।" रोगी ने कहा और फिर घबराहट के कारण रोने लगा। सोमदत्त जी ने नीचे देखा तो चिलमची थूक और पानी से भरी हुई थी। उसे साफ़ कराने को भंगी को साथ लिये जब सोमदत्त जी लौटे तो उन्होंने देखा कि महात्मा मुन्शीराम जी ब्रह्मचारी के सामने झुके खड़े हैं। रोगी कै कर रहा है और वे उसे अपनी अंजलि में कै करा रहे हैं। अपने हाथ स्वच्छ करने के पश्चात् उन्होंने कहा, "तुम जाकर आराम करो। इसकी सेवा के लिए किसी अन्य को भेज दो। तुमसे सेवा हो चुकी। क्या रोगी तुम्हारे वा भंगी के आने तक प्रतीक्षा कर सकता था?" सेवा का कितना ऊँचा आदर्श है!

सेवा का पाठ पढ़िये आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्र से। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जब सेवाएँ बँटने लगीं तो श्री कृष्ण

ने अतिथियों के पैर धोने और उनके जूठे पात्र उठाने का कार्य लिया।

सेवा की भावना सीखिये महर्षि दयानन्द से। एक दिन एक सेवक के सिर में दर्द हो गया तो स्वामी जी उसका सिर दबाने लगे। जब सेवक ने कहा, "महाराज! आप बड़े हैं। बड़ों को छोटों का सिर नहीं दबाना चाहिये।" तब स्वामी जी ने उत्तर दिया, "यदि बड़े छोटों की सेवा न करेंगे तो छोटों में सेवा की भावना कहाँ से आयेगी?"

सेवा कीजिये परन्तु निस्स्वार्थ होकर। जहाँ स्वार्थ आया, वहाँ सेवा से विश्वास उठा। इस विषय में भोले बाबा ने लिखा है—

निस्स्वार्थ सेवा हो सदा, मन मलिन होता स्वार्थ से।
जब तक रहेगा मन मलिन, नहीं भेंट हो परमार्थ से॥

मनुष्य प्रतिपल, प्रतिक्षण दूसरों से सहायता, सहयोग, सेवा और उपकार ग्रहण करता है, इसलिए उसे भी दूसरों की सहायता और सेवा अवश्य करनी चाहिये। महर्षि दयानन्द ने इस विषय में कितना सुन्दर लिखा है—

"यदि अपना भला ही करना उद्देश्य है, तो मनुष्यता क्या हुई? अपने भले का भाव तो गदहों में भी पाया जाता है। पशुमात्र अपने लिए जीता है। परोपकार और परहित-साधन का नाम ही मनुष्यत्व है।"

अपने माता, पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि, रोगी, दुःखी, गौ, देश-जाति की सेवा करना प्रत्येक बालक-बालिका का परम कर्त्तव्य है। हमारे इस शरीर को यह रूप प्राप्त होने में अनेक लोगों की सेवा कारण बनी है। अतः हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम दूसरों की सेवा करें।

सेवाधर्म बड़ा गहन है। सेवा द्वारा मनुष्य का अन्तःकरण जितनी जल्दी निर्मल, शुद्ध एवं पवित्र होता है, उतना और किसी उपाय से नहीं। सेवा द्वारा ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होती है। महर्षि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द की सेवा करके ही दिव्य-ज्ञान की प्राप्ति की थी। फिर देश और जाति की सेवा करके वे अपना नाम भी अमर कर गये। महात्मा गांधी ने भी अपना सारा जीवन सेवा में ही लगा दिया था।

सेवा करो। आपके विद्यालय के मार्ग में यदि काँच के टुकड़े, केले के छिलके या काँटे पड़े हों तो उन्हें हटा दो, जिससे किसी को हानि न हो। अन्धे व्यक्तियों को मार्ग बताओ। अपने पुराने वस्त्रों को बाँट दो। अन्त में स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में इतना ही कहना है—

"द्वेष और कपट को त्याग दो। संगठित होकर दूसरों की सेवा करना सीखो, यही हमारे देश की पहली आवश्यकता है।"

□

: ३० :

भाइयों से प्रेम करो !

वेद का आदेश है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत् । (अथर्व० ३ । ३० । ३)

भाई-भाई में द्वेष न करें, भाई-भाई से न लड़ें और न झगड़ें।

परिवार में सुख, शान्ति और आनन्द का मूल है भाइयों से प्रेम। भाइयों से द्वेष होने से परिवार नष्ट हो जाते हैं, सम्पत्ति वकीलों और कचहरियों की भेंट हो जाती है, घर बर्बाद हो जाते हैं।

भाइयों से प्रेम होने से घर स्वर्ग-धाम बन जाते हैं। मेल-मिलाप से दरिद्रता के दिन भी सुखपूर्वक व्यतीत हो जाते हैं।

भाइयों से प्रेम करो और प्रेम का आदर्श सीखो श्री राम, लक्ष्मण और भरत जी से। जिस समय श्री राम ने अपने राज्याभिषेक की बात सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। गोस्वामी तुलसीदास जी ने उस समय का चित्रण यूँ किया है—

जनमे एक संग सब भाई।
भोजन शयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपवीत बिआहा।
संग संग सब भये उछाहा॥
बिमल वंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

अर्थ—श्री राम कहते हैं—हम सब भाई एक ही साथ जन्मे और बालकपन से ही भोजन, शयन, खेल-कूद, कर्णवेध, यज्ञोपवीत

और विवाह-संस्कार आदि भी साथ ही हुए, परन्तु हमारे निर्मल कुल में यह बड़ी अनुचित बात है कि छोटे भाइयों को छोड़कर राज्यतिलक बड़े को ही हो।

कैसा आदर्श भातृ-प्रेम है !

महाराजा दशरथ का देहान्त हो गया। श्री राम के वनवास और महाराज की मृत्यु के वृत्तान्त को गुप्त रखकर भरत जी को अयोध्या बुलाया गया। भरत जी के अयोध्या पहुँचने पर जब उन्हें माता कैकेयी से पिता जी के मरने का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब वे विलाप करते हुए बोले—

अभिषेक्ष्यति रामं नु राजा यज्ञं नु यक्षते।
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्॥
(वा० रा० अयो० ६२। २६)

हे माता ! मैं समझा था कि महाराज श्री राम को राज्य देकर स्वयं कोई यज्ञानुष्ठान करेंगे। इसलिए मैं प्रसन्न हो वहाँ से चला था।

भरत ने विलाप ही नहीं किया अपितु अपने भाई को वापस लाने के लिए वे वनों में गये। जब श्री राम किसी भी प्रकार से लौटने के लिए तैयार नहीं हुए तो भरत जी श्री राम की चरण-पादुकाएँ लेकर वापस आये और स्वयं १४ वर्ष तक नन्दी ग्राम नामक आश्रम में वानप्रस्थों का जीवन व्यतीत करते रहे।

यह तो राम के प्रति भरत का स्नेह है, अब श्री राम के प्रेम का भी अवलोकन कीजिये। वन को जाते समय श्री राम अयोध्यावासियों से कहते हैं—

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा निवेश्यताम्॥
(वा० रा० अयो० ४५। ६)

हे अयोध्यावासियो ! आप लोगों की जैसी प्रीति, आदर और बहुमान मुझमें है, मेरी प्रसन्नता के लिए आप भरत के प्रति भी वैसा ही आदर और मान रखना।

श्री लक्ष्मण का स्नेह तो जगत्प्रसिद्ध है। वे अपने सुखों को छोड़ श्री राम के साथ वन को चल दिये। जहाँ श्री राम का पसीना गिरता था, वहाँ वे अपना रक्त बहाने को सदा प्रस्तुत रहते थे। कबन्ध राक्षस ने श्री राम और लक्ष्मण को पकड़ लिया तो लक्ष्मण जी ने कहा था—"हे भाई ! इस कबन्ध राक्षस के लिए मेरी बलि देकर अपनी रक्षा कर लो, फिर सीता को प्राप्त कर और अयोध्या के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हो कभी-कभी मेरा स्मरण कर लिया करना।"

कैसा आदर्श प्रेम है !

अब लक्ष्मण के प्रति श्री राम के प्रेम का भी उदाहरण देखिये—

जब मेघनाद की शक्ति लगने के कारण श्री लक्ष्मण जी अचेत हो गये तब श्री राम विलाप करते हुए कहते हैं—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

(वा० रा० यु० १०२। १२, १३)

स्त्रियाँ और भाई-बन्धु तो सब जगह मिल सकते हैं परन्तु ऐसा कोई स्थान दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर भाई मिल सके।

अब महाभारत के एक उज्ज्वल पृष्ठ का अवलोकन कीजिये। पाण्डव वन में थे। दुर्योधन उन्हें चिढ़ाने के लिए राजसी ठाठ-बाट से चला। परन्तु, अभी वहाँ तक पहुँच भी न पाया था कि मार्ग में चित्रसेन गन्धर्व के द्वारा बन्दी बना लिया गया। जब

धर्मराज युधिष्ठिर को पता लगा तो उन्होंने भीम और अर्जुन को उसे छुड़ाने की आज्ञा दी। भीम उस आज्ञा की अवहेलना करते हुए बोला, "मैं और उस पापी को छुड़ाऊँ जिसके कारण हम दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं ? जिसने द्रौपदी का अपमान किया, जो हमारे जीवनों का ग्राहक बना हुआ है ?" यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—

परस्परं विवादे तु वयं पञ्च शतं च ते।
अन्यैः सह विवादे तु वयं पञ्चशतोत्तरम्॥

हमारी आपस की लड़ाई में हम पाँच और वे सौ हैं, परन्तु जब दूसरों से लड़ाई हो तब हम १०५ हैं।

भ्रातृ-प्रेम का कैसा उच्च आदर्श है !

कुमारो ! भारतीय इतिहास की इन प्रेरणाप्रद घटनाओं से शिक्षा लेकर आप भी भाइयों से प्रेम करो।

□

: ३१ :

पूर्वजों के मार्ग पर चलो !

संसार में चलते हुए मनुष्य के सामने विविध मार्ग उपस्थित हो जाते हैं। एक यात्री यात्रा करता हुआ चौराहे या दोराहे पर पहुँच जाय तो उसके समक्ष एक समस्या उपस्थित हो जाती है कि किस मार्ग पर गमन किया जाय ? आज संसार में नाना प्रकार के वाद चले हुए हैं और अनेक मार्ग दिखाई देते हैं। इन वादों और मार्गों को देखकर हमारे सामने एक बहुत बड़ा प्रश्न खड़ा हो जाता है कि हम कौन-से मार्ग पर चलें ?

प्रमुख मार्ग दो हैं। एक मार्ग भौतिकवाद, नास्तिकता और राक्षसी प्रवृत्ति का है; दूसरे शब्दों में उसे वाममार्ग, चारवाकों का मार्ग भी कह सकते हैं। इस मार्ग का आदर्श है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

जब तक जियो सुख से जियो, ऋण ले-लेकर घी का पान करो क्योंकि मरने के पश्चात् फिर जन्म नहीं होता अतः खाओ, पियो, मौज उड़ाओ। खूब भोगों का भोग करो। यही लोक है, परलोक आदि कुछ नहीं है।

राक्षसी मार्ग भी यही है। रावण ने सीता जी से यही तो कहा था—

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।।

(वा० रा० सु० २४। २४)

सीते ! इच्छानुसार भोगों को भोग। खा, पी और मौज कर।

आज का पाश्चात्य जगत् भी इसी मार्ग पर चल रहा है। उन्होंने भी Eat, drink and be merry.—'खाओ, पियो, करो आनन्द, भाड़ में जाय परमानन्द' का मार्ग अपनाया हुआ है। इस मार्ग का परिणाम बड़ा भयंकर है। आइये, आपको पाश्चात्य देशों की सैर कराऊँ।

१९ नवम्बर १९६२ के Daily Mail (लन्दन) में लन्दन की नैतिक स्थिति की रिपोर्ट पढ़िये—इस रिपोर्ट पर लन्दन-कार्पोरेशन के हैल्थ ऑफ़ीसर डॉ० जॉन स्कार्ट के हस्ताक्षर हैं : "गत वर्ष लन्दन में ७५,३६८ बच्चे उत्पन्न हुए जिनमें ६,५३० अवैध थे। लन्दन नगर में पिछले वर्ष जो बच्चे उत्पन्न हुए हैं उनमें प्रत्येक नौ बच्चों में एक अवैध है। ये अवैध बच्चे प्रायः कुँवारी माताओं के पेट से उत्पन्न हुए हैं।"

इस रिपोर्ट के साथ एक अध्यापिका की इस रिपोर्ट को भी जोड़ लीजिये—

"जब लड़कियों के सैकण्डरी स्कूल की छात्राओं के बस्ते देखे गये तो हर चार में से तीन लड़कियों के बस्तों से जो वस्तुएँ निकलीं वे प्रायः ये थीं—

(क) गर्भ-निरोधक गोलियाँ।

(ख) नंगे व गंदे फ़ोटो।

(ग) प्रेम-पत्र व अश्लील पुस्तकें।

(घ) साज-सज्जा के सामान।

इसी प्रकार छात्रों के बस्तों से जो चीज़ें मिलीं वे थीं—

(क) फ्रेंच लैदर।

(ख) अनेक लड़कियों के फ़ोटो और प्रेम-पत्र।

(ग) काम-वृत्ति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें।

अमेरिका की कहानी भी कुछ कम शिक्षाप्रद नहीं है। परन्तु उन सब आँकड़ों को देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

रूस की अवस्था का वर्णन करते हुए कम्युनिज़्म के कट्टर समर्थक वान एन्तानेमीलोव ने लिखा है—

"मज़दूरों में व्यभिचार फैलता जा रहा है।"

सभ्य कहलानेवाले देशों में इस नैतिक पतन को देखकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीमती हड्सन ने ठीक ही लिखा है—

"हमारी सभ्यता की दीवारें गिरने को हैं। उसकी बुनियादें डगमगा गई हैं। न जाने यह पूरी इमारत कब धराशायी हो जाय।"

यह मार्ग भयंकर है, पतन की ओर ले-जानेवाला है, गढ़े में गिरानेवाला है। इस मार्ग पर मत चलो। यदि कल्याण चाहते हो तो पूर्वजों के मार्ग पर चलो। उन्हीं का अनुकरण और अनुसरण करो। मनु जी महाराज का आदेश है—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।।

(मनु० ४। १७८)

जिस मार्ग से बाप-दादा चले हों, उसी श्रेष्ठ मार्ग पर गमन करना चाहिये। सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने से मनुष्य का पतन नहीं होता।

हमारे पूर्वजों का मार्ग भोगवाद का नहीं, त्यागवाद का मार्ग था; नास्तिकता का नहीं, आस्तिकता का मार्ग था। हमारे पूर्वजों का मार्ग सदाचार और श्रेष्ठाचार का मार्ग था। इस मार्ग पर चलते हुए ही तो महाराज अश्वपति ने घोषणापूर्वक कहा था, "मेरे राज्य में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो यज्ञ न करता हो,

कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कंजूस हो, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर भला स्त्री तो हो ही कैसे सकती है !"

वेद का आदर्श है—

जीवास्थ जीव्यासम् । (अ० १६ । ६६ । १)

स्वयं जियो और दूसरों को जीने दो ।

Live and let others live.

आज विश्व अशान्त है । चहुँ ओर हाहाकार है । दो भीषण युद्ध हो चुके हैं, तीसरा सिर पर मँडरा रहा है । दानवता का नंगा नाच हो रहा है । यह सब-कुछ किसलिए है ? इसका कारण है हम अपने पूर्वजों के मार्ग से भटक गए हैं । यह अशान्ति, अन्याय, अनाचार, अनैतिकता और भ्रष्टाचार पूर्वजों के मार्ग पर चलने से ही दूर हो सकता है । वाममार्ग को छोड़कर वेद-मार्ग पर चलो । इसी मार्ग पर चलने में कल्याण है ।

□□